विज्ञान परिचर्चा

त्रैमासिक पत्रिका | वर्ष 2, अंक 4 | अप्रैल–जून 2012

अधिशासी सम्पादक

देवी प्रसाद उनियाल,
वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी, उत्तराखंड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद्, (यूकॉस्ट)

प्रबन्ध सम्पादक

कमला पन्त,
अध्यक्ष, पीपुल्स एसोसिएशन ऑफ हिल एरिया लांचर्स (पहल)

प्रधान सम्पादक

मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी
एसोशिएट प्रोफेसर (से.नि.),
डी.बी.एस. कालेज, देहरादून

सम्पादन सहयोग

शशिकान्त गुप्त
एसोशिएट प्रोफेसर (से.नि.),
डी.बी.एस. कालेज, देहरादून

अजय कुमार बियानी
एसोशिएट प्रोफेसर,
डी.बी.एस. कालेज, देहरादून

नीलाम्बर पुनेठा
जिला समन्वयक, यू–कास्ट, पिथौरागढ़

अशोक कुमार पंत
राज्य समन्वयक,
राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस, उत्तराखण्ड

दिनेश चन्द्र शर्मा
ग्रा० व पोस्ट मस्वासी,
तहसील स्वार, रामपुर, (उ.प्र.)

सलाहकार मण्डल

प्रो. ए.एन. पुरोहित,
पूर्व कुलपति,
हेनब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, आलमी आँचल,
डोभालवाला, देहरादून

डॉ. राजेन्द्र डोभाल,
महानिदेशक,
उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद,
देहरादून

डॉ. एस.एस. नेगी,
निदेशक,
वन अनुसंधान संस्थान,
देहरादून

प्रो. एस.सी. सक्सेना,
निदेशक,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान,
रूड़की

डॉ. ए.के. गुप्ता,
निदेशक, वाड़िया हिमालय भूविज्ञान संस्थान,
देहरादून

डॉ. मनोज पटेरिया,
निदेशक,
राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी संचार परिषद्,
नई दिल्ली

डॉ लीलाधर जगूड़ी,
सीताकुटीर, बदरीपुर,
देहरादून

डॉ. एम.ओ. गर्ग,
निदेशक,
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान,
देहरादून

प्रो. धीरेन्द्र शर्मा,
निदेशक,
सेंटर फॉर साइंस पॉलिसी रिसर्च, निर्मल निलय,
भगवंतपुर, देहरादून

डॉ. रवि चोपड़ा,
पीपुल्स साइंस इंस्टीट्यूट,
252, वसंत विहार, फेज–1,
देहरादून

डॉ. बी.एस. बिष्ट,
कुलपति,
जी.बी.पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
पन्तनगर

डॉ. जी.एस. रौतेला,
महानिदेशक,
राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद्,
कोलिकाता

डॉ. डी.के. पाण्डे,
राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद,
नई दिल्ली

डॉ अनुज सिन्हा,
सलाहकार, विज्ञान प्रसार
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग,
भारत सरकार

डॉ एल.एम.एस. पालनी,
निदेशक,
गोविन्द बल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण
विकास संस्थान, कटारमल कोसी,
अल्मोड़ा

प्रो० रामसागर,
निदेशक,
आर्यभट्ट प्रेक्षण विज्ञान संस्थान,
नैनीताल

डा० जगदीश चन्द्र भट्ट,
निदेशक,
विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
अल्मोड़ा

© vigyan pricharcha, 2010

प्रकाशकीय कार्यालय
मृत्युंजय धाम, 18, शास्त्री नगर, हरिद्वार रोड, देहरादून–248001

फोन : 0135-2669236
मोबाइल : 09759348564, 09412047994, 09897020782, 09837862096
ईमेल : pahal_uttarakhand@yahoo.co.in
वेबसाइट : www.pahal_understanding.org

मुद्रक
एक्सप्रेशन प्रिन्ट एंड ग्राफिक्स
174 सुभाष नगर, देहरादून, 9219552563
e: pacesanjay@rediffmail.com

विज्ञान परिचर्चा के लेखों में प्रकाशित सभी विचार लेखकों के अपने हैं तथा लेखकीय स्वतन्त्रता के अन्तर्गत व्यक्त किये गये हैं। उनके साथ सम्पादक अथवा प्रकाशक का सहमत होना या उन विचारों का पत्रिका की नीति से कोई सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है।

विज्ञान परिचर्चा

त्रैमासिक पत्रिका
वर्ष 2, अंक 4
अप्रैल–जून 2012

पीपुल्स एसोसिएशन ऑफ हिल एरिया लांचर्स (पहल), भारतीय विज्ञान लेखक संघ (इस्वा) उत्तराखंड प्रभाग तथा उत्तराखंड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद् (यूकॉस्ट) के संयुक्त तत्त्वावधान में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका, अंतर्भूत उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद् समाचार पत्रक–
अपैल–जून 2012

पहल

यूकास्ट
विज्ञानम् लोकहिताय

यह पत्रिका विज्ञान के प्रचार–प्रसार हेतु, विज्ञान–सुधी पाठकों के आग्रह पर 'प्रकाशकीय कार्यालय' से निःशुल्क प्रदान की जाती है।

अनुक्रम

पाठकों की प्रतिक्रिया 04

सम्पादकीय 05

उत्तराखण्ड के विज्ञान ऋषि 7 – प्रो.लोकमान सिंह पालनी – मुकुंद नीलकंठ जोशी 06

उत्तराखण्ड के विज्ञान ऋषि 8 – डा. सतीश चन्द्र दास साह – मुकुंद नीलकंठ जोशी 09

उत्तराखण्ड के विज्ञान सस्थान 5 – गोविन्द बल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण एवम् विकास संस्थान 13

विद्युत चुम्बकीय तरंग द्वारा संचार माध्यम का प्रदूषण एवं उसके प्रभाव – के. के. झा 16

मार्ग दर्शक जी॰पी॰एस॰ – राजेन्द्र पाल 20

ग्लोबल वार्मिंग का सरीसृपों के लिंग पर प्रभाव – अर्चना बहुगुणा 23

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग समाचार पत्रक 27

पहल के समाचार – विश्व पृथ्वी दिवस से प्रारम्भ – डार्विन की 12 शानदार प्रस्तुतियाँ 35

मानव के परजीवी – विजय कुमार 38

प्राकृतिक आपदाओं के प्रबंधन में सुदूर–संवेदन – दिनेश मणि 43

विज्ञान कविता – तारामंडल – दिनेश चमोला 45

उत्तराखण्ड के जल संसाधन एवं जनसंख्या : एक अवलोकन – भवतोष शर्मा 46

जल, जंगल और जमीन – एस. के. तिवारी 49

परितंत्र की कहानी–7 – हाथियों पर बढ़ते अत्याचार– दिनेश चन्द्र शर्मा 51

अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइये – प्रवासी जन्तु – एस.के. गुप्ता 52

विज्ञान कविता – नित्य बचाएं मां धरती को – दिनेश चमोला 57

मच्छर सिकन्दर – स्मृति गुप्ता 58

विज्ञान वर्ग पहेली–6 का हल 60

घमरौल 60

पाठकों की प्रतिक्रिया

विज्ञान परिचर्चा का तृतीयांक एवं चतुर्थांक हस्तगत हुआ। इस पत्रिका के माध्यम से विज्ञान विषय के ज्ञान को, जिसे साधारण हिंदी समाज के लिये दुरूह माना जाता है, आम जन तक हिंदी में उपलब्ध करवाने का आपका प्रयास स्तुत्य है। मैं जानती हूँ कि विज्ञान संबंधी शोधपरक उपयोगी लेख शुद्ध एवं परिमार्जित हिंदी भाषा में पहुँचाना सरल नहीं है। पत्रिका के दीर्घ जीवन के लिये शुभकामनाएँ प्रेषित करती हूँ।

सम्पादकीय में राज्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जताते हुए इस अंचल की दूर–दूर तक बिखरी वैज्ञानिक सोच को जन जन तक पहुँचाने के जिस कदम की ओर संकेत किया गया है वह उचित ही है। पहले जब हम स्वयं को जान पहचान लेंगे तो दूरस्थ को जानना समझना स्वतः सरल हो जायेगा।

सामान्यतः विज्ञान को नीरस और कठिन विषय की संज्ञा दी जाती रही है, जबकि यह एक अधूरा सत्य है। मैं एक कला स्नातक रही हूँ। अतः इस बात से अनेक बार दो चार हुई हूँ कि विज्ञान को समझना मेरे लिये संभव नहीं है। विज्ञान परिचर्चा को भी सांगोपांग समझना मेरे लिये सरल नहीं रहा पर इतना अवश्य मानती हूँ कि निरंतर पड़ती हथौड़े की सख्त चोट से लोहा भी आकार बदल लेता है। ज्ञान यदि विस्तृत आकाश है तो विज्ञान उस आकाश के नक्षत्र। विज्ञान हमें जीवन का तार्किक अध्ययन, विश्लेषण करवा नये आविष्कार की जमीन उपलब्ध करवाता है। वर्षों पहले हमारे ऋषि मुनि अपने ज्ञान की उच्चता जांचने के लिये स्वयं को तार्किक शास्त्रार्थ की कसौटी पर कस कर ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करते थे। आज के वैज्ञानिक के लिये शोध प्रबंध या लेख–आलेख का प्रस्तुतिकरण उसी परंपरा का हिस्सा है। विज्ञान विषय कह कर जिन विषयों से हम दूर भागते हैं, विज्ञान परिचर्चा के लेखों ने सिद्ध कर दिया कि हमारा सारा जीवन इसके कितने आस पास है।

उत्तराखण्ड के विज्ञान ऋषि, मोरी अटरिया पे काग बोले, गुणों की खान है नमक, पानी क्या हकीकत क्या कहानी, जड़ी बूटी तथा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संतुलन जैसे उपयोगी ज्ञान वर्द्धक लेख पाठक को लुभाते हैं। रश्मि गैरोला का पुरस्कृत लेख 'वैज्ञानिक पत्रकारिता की चुनौतियाँ' सार्थ पत्रकारिता का मार्ग प्रशस्त करता है। परिचर्चा के अंक अपनी साजसज्जा, प्रस्तुतिकरण, परिमार्जित हिंदी भाषा का निर्वाह तथा शैलीगत सौन्दर्य के कारण आकर्षक बन गये है।

कौशल्या अग्रवाल
18, ओल्ड सर्वे रोड,
देहरादून

विज्ञान परिषद् प्रयाग में आपकी प्रतिष्ठित पत्रिका 'विज्ञान परिचर्चा' के वर्ष 2, अंक 1 तथा 2 को पढ़ने का अवसर मिला। यह देखकर बहुत अच्छा लग रहा है कि प्रत्येक अंक के साथ पत्रिका में निखार आता जा रहा है। चाहे बात लेखों के स्तर और गुणवत्ता की हो या उनके साथ लगे श्वेत–श्याम और नयनाभिराम बहुरंगी चित्रों की हो अथवा साफ–सुथरे मुद्रण की हो, सभी कुछ उच्च स्तर का है। लेखों की भाषा सरल और शैली रोचक है इसलिये पाठकों को विज्ञान की जटिल बातें भी समझ में आ जाती हैं। यह आपके और आपके सहयोगियों की सूझबूझ और कठिन परिश्रम का सुफल है।

वर्ष 2 अंक 1 में इरफान ह्यूमन की विज्ञान कथा 'यू एफ ओ', श्री कालीशंकर का लेख 'अस्पतालों में अंतरिक्ष तकनीक का उपयोग' के अतिरिक्त 'नैनो कणों की कहानी' और 'दुनिया कर लो मुट्ठी में' लेख विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

इसी तरह वर्ष 2 अंक 2 में धीरेन्द्र शर्मा का 'भारतीय दर्शन और विज्ञान' दिनेश मणि का 'डोपिंग दंश : खेलों में प्रतिबन्धित दवाओं का बढ़ता प्रयोग, विकास चन्द्र एवं जी. एस. शर्मा का 'पशुधन विकास में भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक का योगदान' और अजय कुमार बियानी का 'आइने में भारतीय विज्ञान' मुझे विशेष रूप से अच्छे लगे।

'विज्ञान परिचर्चा' उँचाइयों के नये शिखर छुए इस शुभकामना के साथ।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
से.नि. वनस्पति विज्ञान विभागाध्यक्ष
सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद

संपादकीय

विज्ञान परिचर्चा त्रैमासिक के दूसरे वर्ष का अंतिम अर्थात् चौथा अंक आपके हाथ में है। किसी भी पत्रिका की दृष्टि से आठ अंक कोई बहुत अधिक नहीं होते परन्तु इतने निश्चित रूप से होते हैं जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि हम सही मार्ग पर चल रहे हैं अथवा नहीं। और इस बात की कसौटी है पाठकों की प्रतिक्रिया। लेकिन प्रतिक्रियाएँ भी कई प्रकार की होती हैं और ये सभी हमें मिली। एक तो कौतुक की होती हैं। जैसे कोई बच्चा तुतलाता है या लड़खड़ाते हुए चलता है तो भी बड़े स्नेहवश प्रसन्नता से ताली बजाते हैं और उसका उत्साहवर्धन करते हैं। दूसरी प्रतिक्रिया मित्रों तथा परिचितों की होती है जो केवल संबंधों को देखते हुए प्रशंसा के उद्‌गार प्रकट करते हैं। इन दोनों ही प्रकार की प्रतिक्रियाओं का सम्मान तो किया जा सकता है परन्तु वे विशेष लाभदायक नहीं होतीं। तीसरे प्रकार की प्रतिक्रिया अधिक महत्त्वपूर्ण होती है जो सजग पाठक की होती है। ऐसा पाठक जो चीज पसन्द आती है उसकी दिल खोल कर दाद देता है और जो नहीं जंचती उस पर अपनी नापसन्दगी भी स्पष्ट रूप से प्रकट करता है। हम ऐसी ही प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा में रहते हैं। चूंकि यह पत्रिका निःशुल्क वितरण के लिये है अतः हम जहाँ जहाँ इसे भेजते हैं वहाँ वहाँ यह अनुरोध भी करते हैं कि आपकी बेबाक राय दीजिये। आखिर धन व्यय हो रहा है तो उसका सदुपयोग होना ही चाहिये। विज्ञान से संबंधित जानकारियाँ तथा वैज्ञानिक विचार जनसामान्य तक पहुँचाने का जो हमारा उद्देश्य है उसकी सफलता पाठकों के सहयोग के बिना संभव नहीं है। इस दृष्टिकोण से देखने पर हम सचमुच अपने को भाग्यशाली समझते हैं क्योंकि हमें इस प्रकार की समालोचनात्मक तथा रचनात्मक सुझावों से युक्त अनेक प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुईं।

हमारा उत्साह इस बात से भी काफी बढ़ा कि हमें देश तथा प्रदेश के विभिन्न भागों के अनेकानेक स्थापित तथा नये लेखकों का लेखन सहयोग सतत प्राप्त हो रहा है। इसीके फलस्वरूप हम विषय वैविध्य के साथ–साथ उत्तम स्तरीय जानकारीपूर्ण तथा विचारोत्तेजक सामग्री पाठकों तक पहुँचा सके। एक ओर जहाँ वैज्ञानिक चितंनपरक साहित्य जैसे 'तकनीक स्वीकार, विज्ञान अस्वीकार, 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण', 'वैज्ञानिक पत्रकारिता' 'विज्ञान शिक्षण की समस्यायें', 'भारतीय दर्शन और विज्ञान', बाल–विकास में सहायक विज्ञान' **विज्ञान पर समाज का प्रभाव** आदि लेख मिले वहीं दूसरी ओर 'अल्प दृष्टिवालों के लिये सहायक विज्ञान,' 'शारीरिक समस्याग्रस्त व्यक्तियों के लिये कंप्यूटर' जैसे समाज से सीधे जुड़े विषयों पर भी व्यावहारिक जानकारी हम दे सके। चिकित्सा विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, भू विज्ञान, कृषि विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान तथा प्राणी विज्ञान से संबंधित विषयों पर तो लेख थे ही परन्तु साथ ही साथ कौए और मेढ़क पर लिखित निबन्ध भी प्रकाशित हुए। विज्ञान कक्षाएँ, व्यंग लेख, व्यंग चित्र, विज्ञान कविताएँ भी पत्रिका का श्रृंगार बनीं। अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइये, सामयिकी, परितन्त्र की कहानी जैसे स्तम्भ चल रहे हैं। उत्तराखण्ड के विज्ञान ऋषि क्रम में उत्तराखण्ड से संबंधित वैज्ञानिकों का परिचय तथा उनसे साक्षात्कार हम प्रत्येक अंक में देते आ रहे हैं।

उत्तराखण्ड की वैज्ञानिक गतिविधियों की अद्यतन सूचनाएँ उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी परिषद के समाचार पत्रक के रूप में परिचर्चा के अंगभूत ही हैं। तो इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हमारी अब तक की यात्रा उत्साहवर्धक रही है।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि यह यात्रा संतोषजनक भी रही हो। अभी अनेक कमियाँ हैं, सुधार की अनेक संभावनाएँ हैं। हम उनके प्रति जागरूक हैं। यह विश्वास भी है कि विद्वान् लेखकों के और भी अधिक सक्रिय सहयोग से हम अब जब तीसरे वर्ष में प्रवेश करने जा रहे हैं तो और अधिक निखर कर सामने आयेंगे।

मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी

उत्तराखण्ड के
विज्ञान ऋषि 7

प्रो. लोकमान सिंह पालनी

इकीसवीं सदी में वैज्ञानिक उन्नति के आयाम मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में बढते दिखाई देते हैं। ये क्षेत्र हैं सूचना प्रौद्योगिकी, नैनो प्रौद्योगिकी तथा जैव प्रौद्योगिकी या बायोटेक्नोलॉजी। इन सभी क्षेत्रों में इतनी क्रान्तिकारक खोजें हो रही हैं कि जिनके कारण मानव समाज का स्वरूप प्रत्यक्ष रूप से और संपूर्ण पृथ्वी का स्वरूप अप्रत्यक्ष रूप से अत्यन्त तेजी से बदल रहा है।

वैसे तो बायोटेक्नॉलॉजी की कल्पना कोई नई नहीं है। जीव के शरीर में बाहरी प्रयास से परिवर्तन किया जा सकता है ऐसा विचार तो मनुष्य प्रारंभिक काल से ही करता आ रहा है। इसीलिये तो पुराणों में भगवान शंकर द्वारा अपनी पत्नी पार्वती के बेटे का सिर काट दिये जाने तथा बाद में उस बच्चे के धड़ में एक मरे हाथी का सिर जोड़ दिये जाने की कल्पना तत्कालीन किसी ऋषि के मन में आई। परन्तु आज वैज्ञानिक जीवों के शरीर में परिवर्तन करने की ऐसी बातों को केवल पोथी पुराणों की काल्पनिक कहानियों से उठा कर वास्तविकता के धरातल पर ले आया है। उसके इन्हीं प्रयासों से कृषि के उत्पादन में क्रांतिकारी वृद्धि हुई, मनुष्य की रोगों से लड़ने की क्षमता में असाधारण प्रगति हुई, जीव स्तर पर जीवन के रहस्यों को समझने में हम अद्भुत ढंग से आगे बढ़े और पृथ्वी का जीव जगत् जो अब तक केवल प्रकृति ही बदलती आ रही थी अब मनुष्य द्वारा भी बदले जा सकने की संभावनाएँ बलवती हुई हैं। इसीलिये आज सारे विश्व के जैव प्रौद्योगिकी विज्ञानी अनेकानेक दिशाओं में नवनवीन आविष्कारों को करने में जुटे हुए हैं। भारत भी इस दिशा में पीछे नहीं है। ऐसे ही एक विश्वस्तरीय वैज्ञानिक उत्तराखण्ड क्षेत्र में भी मनोयोग से कार्यरत हैं जिनका नाम है लोकमान सिंह पालनी।

प्रो. पालनी का जन्म 22 मई 1953 को अल्मोड़ा में हुआ। उनके पिता उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय सेवा में कार्यरत थे अतः प्रो. पालनी का बचपन प्रदेश के अनेक स्थानों पर बीता। इसका एक परिणाम हुआ कि किसी एक स्थान पर वे अपनी प्रारम्भिक औपचारिक शिक्षा न पा सके। परन्तु कानपुर की पाठशाला से उन्होंने सीधे पाँचवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की। उत्तर प्रदेश बोर्ड से 1966 में हाईस्कूल तथा 1968 में इंटरमीडिएट करने के बाद उन्होंने गोरखपुर विश्वविद्यालय से बी.एससी. तथा 1972 में वनस्पति विज्ञान में एम.एससी. की उपाधियाँ प्रथम श्रेणी में प्राप्त कीं। तुरत ही वे डी.एस.बी. महाविद्यालय, नैनीताल में जो बाद में कुमाऊँ विश्वविद्यालय बन गया, वनस्पति विज्ञान के प्रवक्ता बन गये। सन् 1977 में वे उच्च अनुसन्धान हेतु छात्रवृत्ति प्राप्त कर इंग्लैण्ड चले गये जहाँ वेल्स विश्वविद्यालय से सन् 1980 में उन्होंने पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद 1980 से 1989 तक वे ऑस्ट्रेलियन नेशनल युनिवर्सिटी, कैनबरा में अनुसंधान वैज्ञानिक के रूप में कार्यरत रहे। मूलतः वृत्ति से अध्यापक होने के कारण वे वहाँ भी अनुसंधान के साथ–साथ अध्यापन कार्य भी करते रहे।

इस प्रकार अनेक वर्षों तक विदेश में रहते हुए भी प्रो. पालनी के अन्दर का वैज्ञानिक छटपटा रहा था कि उन्होंने जो ज्ञान अर्जित किया है उसका उपयोग अधिक से अधिक अच्छे ढंग से स्वेदश में कैसे किया जाये। भारत में भी यह हिमालय पुत्र इस नगाधिराज की गोद में आने के लिये व्याकुल था। वह अवसर उन्हें सन् 1989 में मिला जब उन्हें भारतीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी अनुसंधान परिषद (सी.एस.आइ. आर.) द्वारा पालमपुर, हिमाचल प्रदेश में बायोटेक्नोलॉजी डिवीजन के संस्थापक तथा प्रथम अध्यक्ष के रूप में काम करने का अवसर मिला। आज यह संस्थान हिमालय जैव संपदा प्रौद्योगिकी संस्थान (इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन बायोरिसोर्स टेक्नोलॉजी) के रूप में जाना जाता है। सन् 1989 से 1992 तक प्रो. पालनी वहां रहे और उन्होंने इस संस्थान को एक विश्व स्तरीय शोध संस्थान के रूप में विकसित कर दिया। परन्तु उत्तराखण्ड का यह लाड़ला सुपुत्र अपने इस क्षेत्र में कुछ कार्य करने हेतु व्याकुल था। अतः सन् 1992 में अल्मोड़ा के पास कोसी कटारमल में उन्हें गोविन्द वल्लभ पंत इंस्टीटयूट ऑफ हिमालयन एंवार्नमेंट एंण्ड डेवलपमेंट में एंवार्नमेंटल फीजियोलॉजी तथा बायोटेक्नोलॉजी डिवीजन की स्थापना करने का अवसर मिला तो उसे उन्होंने सहर्ष, सोत्साह स्वीकार किया तथा वे इसके प्रथम संस्थापक अध्यक्ष बने। सन् 1995 में वे इस संस्थान के निदेशक बन गये। इसी बीच सन् 2003 में उन्हें उत्तराखण्ड सरकार द्वारा राज्य जैव प्रौद्योगिकी कार्यक्रम का परियोजना निदेशक तथा वरिष्ठ वैज्ञानिक सलाहकार नियुक्त किया गया। इस पद पर वे अपने मूल संस्थान से 5 वर्ष की प्रतिनियुक्ति पर आये। सन् 2008 तक इस पद पर कार्य करते हुए उन्होंने नवनिर्मित उत्तराखण्ड राज्य को जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत में अग्रणी स्थान पर खड़ा कर दिया। उन्होंने राज्य में वैज्ञानिक शोध की दिशा देने के उद्देश्य से उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा तथा अनुसंधान केन्द्र (यू एस ई आर सी) की राज्य सरकार की ओर से स्थापना कराई तथा 2005 से 2008 तक उसके संस्थापक निदेशक के रूप में उसे गति भी प्रदान की। सम्प्रति वे गोविंद वल्लभ पन्त इंस्टीट्यूट के निदेशक के रूप में राज्य में जैवप्रौद्योगिकी शोध का नेतृत्त्व कर रहे हैं। कोसी कटारमल भारत के उन गिने चुने स्थानों में से एक है जो सूर्य पूजन के लिये प्रसिद्ध हैं। उसी स्थान से आज जैव प्रौद्योगिकी का यह सूर्य देश–विदेश को भारत की वैज्ञानिक आभा से आलोकित कर रहा है।

डॉ. पालनी के शोध का प्रमुख क्षेत्र वनस्पति वृद्धि के लिये प्रभावी पदार्थ, पर्यावरण परिवर्तनों के प्रति वनस्पति प्रतिक्रिया, प्रादप ऊतक संवर्द्धन (प्लांट टिशू कल्चर), सूक्ष्मजीव सहसंबंध, जैव विविधता, जैव प्रौद्योगिकी, ग्रामीण विकास, विज्ञान तथा सामाजिक कार्यक्रम–विशेषकर हिमालय के सन्दर्भ – में आदि हैं। इन शोधों के लिये उन्होंने अनेक परियोजनाओं पर कार्य किया जो विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, पर्यावरण तथा वन मंत्रालय, अंतरिक्ष अनुसंधान विभाग, वैज्ञानिक तथा प्रोद्योगिकी परिषद् यू.एन.डी. पी., यूनेस्को तथा अन्य देशी–विदेशी संस्थानों तथा विभागों द्वारा स्वीकृत थीं। उनके निर्देशन में ऑस्ट्रेलियन नेशनल युनिवर्सिटी, कैनबरा, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय तथा कुमाऊँ विश्वविद्यालय से अनेक विद्यार्थियों ने पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है तथा अनेक आगे भी शोध कार्य कर रहे है।

स्वाभाविक रूप से डॉ. पालनी का इतने विस्तृत गहन अध्ययन का प्रतिफल उनके शोध पत्रों में प्रतिविम्बित होता है। विश्व की मान्यता प्राप्त शोध पत्रिकाओं में उनके लगभग 175 शोध पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त 7 लघु शोध पत्र, 10 वैज्ञानिक समीक्षाएँ, 30 संगोष्ठी विवरणिकाओं में प्रकाशित लेख, 46 पुस्तकों के अध्याय, 12 लिखित तथा संपादित पुस्तकें, 20 लोकप्रिय विज्ञान आलेख तथा अन्य अगणित विवरण, संगोष्ठी प्रस्तुतिकरण आदि से युक्त उनका विशाल लेखन विश्व उनकी विद्वत्ता के परिचायक के रूप में वैज्ञानिक जगत् में दीप्तिमान हो रहा है।

इस प्रकार अपने विषय के अध्ययन में सतत् निरत इस विज्ञान ऋषि को अनेकानेक सम्मान तथा पुरस्कार प्राप्त हुए हैं इसमें क्या आश्चर्य हो सकता है? जैसे पूत के पांव पालने में दिखते हैं वैसे ही डॉ. पालनी को मिले इन सम्मानों का प्रारम्भ उन्हें एम.एससी. परीक्षा में मिले स्वर्ण पदक से हुआ। एम.एससी. तथा पी. एच.डी. के लिये उन्हें प्रतिभा वृत्ति भी प्राप्त हुई थी। 1984 में ब्रिटिश काउंसिल का ए. एल.आइ.एस. अवार्ड, 1992 में सी. वेंकटराम मेमोरियल पुरस्कार, 2000 में जन संरक्षण के लिये आइ सी एफ आर ई पुरस्कार, 2004 में एन.ए.एस.आइ. द्वारा प्रदत्त प्रो. श्री रंजन मेमोरियल लेक्चर अवार्ड, 2006 में प्राप्त उत्तरांचल रत्न सम्मान, नेशनल एकेडेमी ऑफ साइंसेज का 2007 में मिला बायोडाइवर्सिटी अवार्ड, 2007 में रम्भा खेतवाल न्यास विशिष्ट सम्मान, 2009 में आइ.ई.डी.आर.ए., नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त राष्ट्रीय उपलब्धि पुरस्कार तथा 2009 में ही अल्मोड़ा में प्राप्त एस.एस. जिना स्मृति सम्मान उन्हें प्राप्त पुरस्कारों तथा सम्मानों में से कुछ हैं। कुमाऊँ विश्वविद्यालय ने सन् 1999 में उन्हें वनस्पति विज्ञान का सम्माननीय प्राध्यापक तथा जामिया हमदर्द विश्वविद्यालय, नई दिल्ली ने 2002 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का अनुबन्धित प्राध्यापक नियुक्त किया।

इस प्रकार विज्ञान जगत् में अपनी अमूल्य प्रतिभा तथा अनथक प्रयास से उत्तराखण्ड की कीर्ति ध्वजा को सतत् लहराते रहने वाले इस विज्ञान ऋषि से विज्ञान परिचर्चा की ओर से मैने तथा मेरे सहयोगी डॉ. शशिकांत गुप्त ने व्यक्तिशः भेंट कर विभिन्न विषयों पर उनसे चर्चा की। प्रस्तुत है उस भेंट वार्ता के कुछ अंश।

विज्ञान परिचर्चाः— प्रो. पालनी! जैसा कि आपसे हमें ज्ञात हुआ कि आपकी प्रारंभिक औपचारिक शिक्षा अपेक्षाकृत कुछ देर से प्रारंभ हुई। क्या आपको इससे कुछ हानि हुई?

पालनीः—अरे नहीं, बल्कि लाभ ही हुआ। घर पर ही मेरे माता—पिता ने मेरी इतनी तैयारी करा दी थी कि विद्यालय ने मुझे सीधे पाँचवीं कक्षा में ही भर्ती कर लिया। फल यह हुआ कि मैंने साढे उन्नीस वर्ष की आयु में ही एम.एससी. की उपाधि प्राप्त कर ली।

विज्ञान परिचर्चाः— आप विश्व के अनेक भागों में रहे हैं। अनेक श्रेष्ठतम प्रयोगशालाओं में कार्य किया है। आप विश्व के मानचित्र पर भारत के विज्ञान जगत को किस स्तर पर पाते हैं?

पालनीः— देखिये दो बातें हैं। हमारे देश में प्रतिभा की कोई कमी नहीं है। अवसर मिलना चाहिये। होता यह है कि कभी—कभी हमारी नीतियाँ कुछ ऐसी बन जाती हैं जो प्रतिभाओं के विकास में सहायक नहीं होतीं। उदाहरण के लिये मेरा यह मानना है कि किसी भी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय में वहीं पर पढ़े हुए विद्यार्थी को अध्यापक नहीं बनाया जाना चाहिये। व्यक्ति की प्रतिभा का मूल्यांकन ठीक ढंग से तभी हो सकता है जब वह अन्यत्र जा कर अपने कार्य से प्रशंसा प्राप्त कर सके। वही के व्यक्ति वही रह गये तो विकास की गति कुंठित हो जाती है।

विज्ञान परिचर्चाः— आप वैज्ञानिक के साथ—साथ शिक्षा से भी सम्बद्ध रहे हैं। उत्तराखण्ड में आपने विज्ञान शिक्षा तथा अनुसंधान केन्द्र की स्थापना कर उल्लेखनीय कार्य किया है। जैव प्रौद्योगिकी की शिक्षा का स्वरूप यहाँ कितना विकसित हुआ है।

पालनीः— हो रहा है, धीरे—धीरे बढ़ रहा है। परन्तु जब, तक हम अपने पाठयक्रमों में परिवर्तन नहीं करेंगे तब तक इसमें गति नहीं आयेगी। पहले केवल पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय में ही बायोटेक्नोलॉजी का व्यवस्थित अध्यापन था। अब अन्य स्थानों पर भी हो रहा है। मैने स्वयं एक कार्यक्रम बनाया जिसमें प्रदेश के भिन्न—भिन्न विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के शिक्षकों को देश की उत्तम प्रयोगशालाओं में भेज कर उन्हें उत्तम प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था की। अब पाठयक्रमों में यशेष्ट परिवर्तन कर उसे अधुनातन बनाना होगा। जैव प्रौद्योगिकी या बायोटेक्नॉलाजी एक बहुशाखीय शास्त्र है। इसलिये इसके अध्ययन के लिये अनेक सम्बद्ध विषयों का ज्ञान प्राप्त करना होता है। इस दृष्टि से प्रयास होना बाकी है।

विज्ञान परिचर्चाः— जैव प्रौद्योगिकी शोध के क्षेत्र में हमारी प्रगति बहुत धीमी क्यों है?

पालनीः— ऐसा नहीं है। कुछ केन्द्रों पर एकदम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का कार्य हो रहा है। अनके अन्य स्थानों पर स्थिति उतनी संतोषजनक नहीं है। मिली जुली सी स्थिति है।

विज्ञान परिचर्चाः— आपके विचार से ऐसा क्यों है?

पालनीः— जैसा कि मैने कहा बायोटेक्नॉलॉजी एक बहुशाखीय विषय है। इसमें प्रगति तभी हो सकती है जब अनेक विषयों के विद्वान् मिल जुलकर अपनी अपनी विशेषज्ञता के साथ किसी समस्या पर कार्य करें। यह सामंजस्य या सहयोग की भावना हमारे यहाँ कुछ कम है। हर व्यक्ति अपनी अपनी ढपली लेकर अपना अपना राग बजाना चाहता है। यह तो एक बात है। दूसरी बाधा है क्षेत्रीयता की भावना की। इन स्थितियों में परिवर्तन होगा तो हम निश्चित रूप से विश्व के साथ होंगे।

विज्ञान परिचर्चाः— क्या आप परिचर्चा के पाठकों के लिये कोई सन्देश देना चाहेंगे?

पालनीः— पृथ्वी पर जैव विविधता जीवन का उत्सव है। प्रकृति के द्वारा हमें प्राप्त यह एक अद्भुत उपहार है। इस विविधता की रक्षा करना हमारा दायित्व है। जन जन में पर्यावरण संरक्षण के संबंध में जागरूकता उत्पन्न करना हम सभी का कर्तव्य है। प्रति वर्ष मार्च महीने में हम एक घंटे के लिये सारे देश में घर घर में बिजली का प्रकाश बंद कर ऊर्जा बचत का यही संदेश देते हैं। 2011 से 2020 का दशक हम अन्तर्राष्ट्रीय जैव विविधता दशक के रूप में मना रहे हैं। विश्व स्तर पर या देश स्तर पर जो कार्यक्रम होते हैं उन्हें हमें घर—परिवार स्तर तक लाना चाहिये।

विज्ञान परिचर्चाः— प्रो. पालनी! आपने विज्ञान परिचर्चा के लिये समय दिया तथा अपने विचारों की हमारे पाठकों के साथ सहभागिता की इसके लिये हम परिचर्चा की ओर से आभार प्रकट करते हैं।

मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी

उत्तराखण्ड के विज्ञान ऋषि–8

डॉ. सतीश चन्द्र दास साह

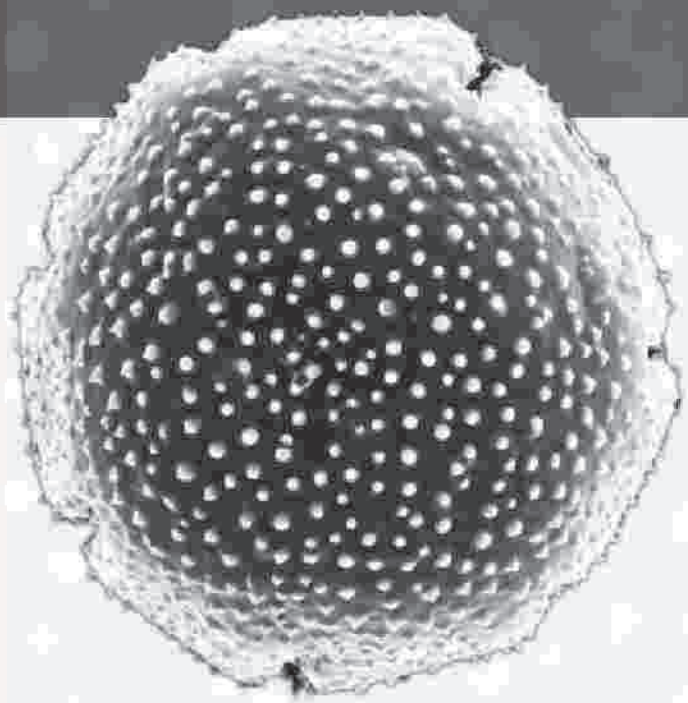

अत्यन्त विशिष्ट विज्ञान होने के कारण विश्व भर में कुल वैज्ञानिकों की संख्या का एक अत्यन्त प्रतिशत ही परामाणु वैज्ञानिकों का होगा। भारत में भी वे कम ही हैं। उत्तराखण्ड के लिये यह निश्चित रूप से गौरव की बात है कि इनमें से एक विश्व प्रसिद्ध परामाणु वैज्ञानिक डॉ. सतीश चन्द्र दास साह के रूप में उत्तराखण्ड की धरती ने दिया तथा उसने भी इसे अपना कार्य क्षेत्र बना कर इस भू भाग के ऋण को चुकता करने में कोई कसर न छोड़ी।

प्रकृति के रहस्यों को सुलझाने का नाम विज्ञान है। सुलझाने की इस प्रक्रिया में प्रकृति के विभिन्न आयामों को देख कर आश्चर्यचकित होना, भाव विभोर होना तथा उनकी निर्माणकर्त्री तथा संचालनकर्त्री किसी अलौकिक, दिव्य शक्ति की कल्पना कर उसके सामने नतमस्तक होना नहीं वरन् उन रहस्यों का गहन से गहनतर अध्ययन कर सम्पूर्ण प्राकृतिक नियमों को समझना तथा उस आधार पर तर्कपूर्ण निष्कर्षो तक पहुँचना ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। किसी भी समस्या को जितने अधिक रूप में देखना संभव हो उतने ढंग से वैज्ञानिक उसका परीक्षण करते हैं। इसीलिये विज्ञान की एक से एक सूक्ष्म से सूक्ष्म शाखाएँ विकसित और पल्लवित होती जाती हैं। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान या जीव विज्ञान जैसे मुख्य बड़े–बड़े विभागों के अन्तर्गत अत्यन्त विशिष्टता से युक्त ज्ञान के किसी बहुत ही छोटे से हिस्से का बहुत गहरा अध्ययन जब होता है तो ये सीमित क्षेत्र किंतु असीमित प्रभाव वाले

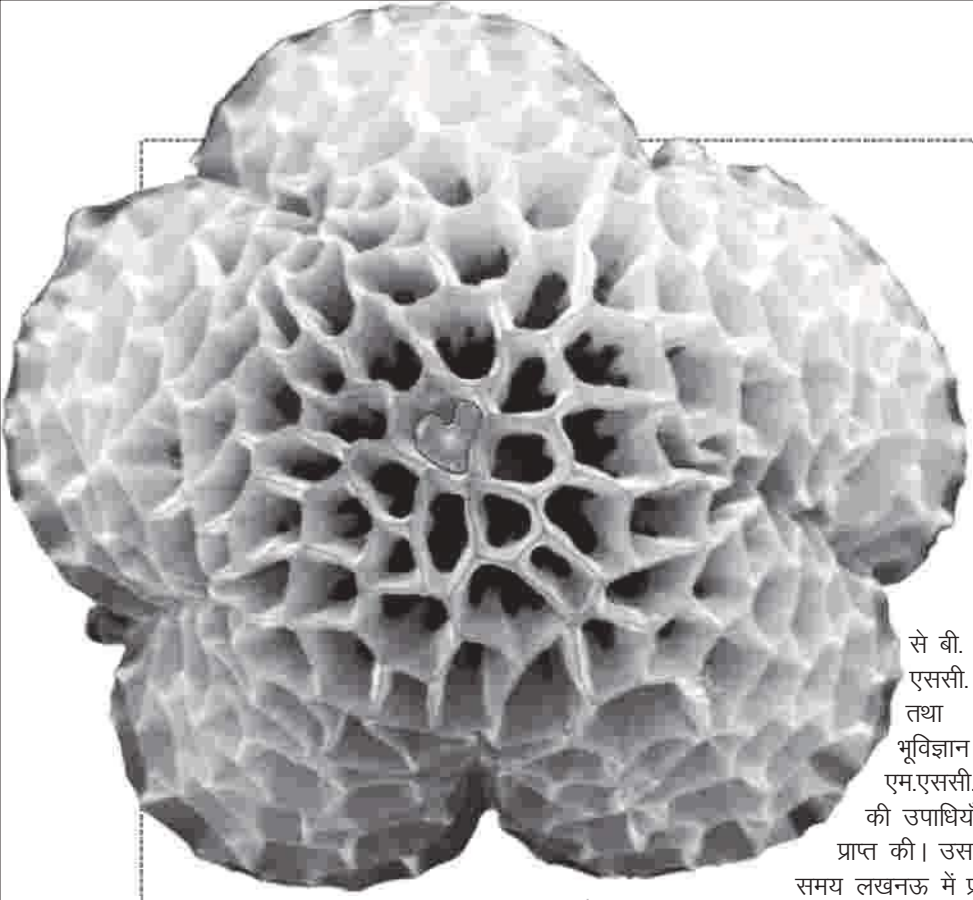

विज्ञान विषय हमारे सामने आते हैं। परमाणु विज्ञान (पैलीनौलोंजी) एक ऐसा ही विज्ञान है जिसकी सीमा इतनी संकुचित है कि इसमें शैलों में पायी जाने वाली प्राचीन काल की वनस्पतियों के केवल बीजाणु (स्पोर) तथा परागकणों (पोलेन ग्रेन) के जीवाश्मों का अध्ययन होता है परन्तु इसकी व्याप्ति इतनी बड़ी है कि आज पृथ्वी का इतिहास समझने, शैलों की आयु निकालने और साथ ही साथ भूमि के अन्दर पेट्रोलियम की खोज में यह एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में विकसित हुआ है। अत्यन्त विशिष्ट विज्ञान होने के कारण विश्व भर में कुल वैज्ञानिकों की संख्या का एक **अल्यल्प** प्रतिशत ही परागाणु वैज्ञानिकों का होगा। भारत में भी वे कम ही हैं। उत्तराखण्ड के लिये यह निश्चित रूप से गौरव की बात है कि इनमें से एक विश्व प्रसिद्ध परागाणु वैज्ञानिक डॉ. सतीश चन्द्र दास साह के रूप में उत्तराखण्ड की धरती ने दिया तथा उसने भी इसे अपना कार्यक्षेत्र बना कर इस भू भाग के ऋण को चुकता करने में कोई कोर कसर न छोड़ी।

डॉ. साह का जन्म दि. 6 मई 1926 (वास्तविक), 1927 (प्रमाणपत्रीय) को नैनीताल में हुआ। आपके पिता श्री बिशन दास साह वहाँ के एक प्रसिद्ध व्यवसायी तथा ऑनरेरी मैजिस्टेट थे। अपनी प्रारंभिक शिक्षा कुमाऊँ अंचल में ही प्राप्त करने के बाद डॉ. साह ने लखनऊ विश्वविद्यालय से बी. एससी. तथा भूविज्ञान में एम.एससी. की उपाधियाँ प्राप्त की। उस समय लखनऊ में प्रो. बीरबल साहनी के रूप में एक अत्यन्त ख्यातनाम तथा श्रेष्ठ वनस्पति विज्ञानी थे जो डॉ. साह के लिये प्रेरणास्पद बने। वे एक महान् पुरावनस्पति शास्त्रज्ञ (पैलियोबॉटेनिस्ट) थे। उन्होंने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक लखनऊ में पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान की स्थापना की जो भारत में इस विषय में शोध करने वाला एकमात्र शोध संस्थान है। दि. 3 अप्रैल 1949 को प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के कर कमलों द्वारा इस संस्थान का शुभारम्भ हुआ। परन्तु दुर्भाग्य से छः दिन बाद ही प्रो. साहनी का देहावसान हो गया। उन्हीं की स्मृति में इस संस्थान का नाम बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑफ पैलियोबॉटनी रखा गया। अगस्त 1949 में डॉ. साह ने इस संस्थान में वैज्ञानिक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया और प्रो. साहनी के ही पदचिन्हों पर चलते हुए वे एक श्रेष्ठ पुरावनस्पति विज्ञानी बने। पुरावनस्पति विज्ञान भूविज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान दोनों का सम्मीलित शास्त्र है। प्रो. साहनी जहाँ वनस्पति विज्ञान की पृष्ठभूमि के थे वहीं डॉ. साह भूविज्ञान की पृष्ठभूमि के। परन्तु इस विषय में श्रेष्ठता वही पा सकता है जिसकी दोनों विषयों में समान गति हो।

डॉ. साह ने अपना शोध कार्य राजमहल ट्रैप के वनस्पति जीवाश्मों पर किया। जुरासिक काल के अन्त तथा क्रटेशियस काल के प्रारंभ में (लगभग 1 करोड़ 50 लाख से 1 करोड़ 25 लाख वर्ष पूर्व) आज के प्रायद्वीपीय भारत के पूर्वी भाग (बंगाल क्षेत्र) में बहुत बड़ी मात्रा में ज्वालामुखी उद्रेक हुए। बंगाल की राजमहल पहाड़ियाँ इन्हीं ज्वालामुखीय लावा से निर्मित शैलों की बनी हुई हैं। बहुधा जहाँ ज्वालामुखी फटते हैं वहाँ दो विस्फोटों तथा लावा निकलने के बीच सैकड़ों से हजारों वर्षों का शांत समय भी होता है। इस शांत समय में उस स्थान पर वर्षा के कारण नदियाँ या झीलें बन सकती हैं जिनमें मिट्टी बालू आदि जमा होते है। पेड़ पौधे भी पनपते हैं। जंगल बढ़ते है। जीव जन्तु विचरते हैं। इन सबके जीवाश्म उस मिट्टी या बालू से बने शैलों में तैयार होते हैं। बाद में फिर ज्वालामुखी फटता है तो उन शैलों को नये लावा से बने शैल ढंक देते है। ऐसे ही बनी हैं ये राजमहल की पहाड़ियाँ। उन पहाड़ियों में दो लावा संस्तरों के बीच जो मिट्टी, बालू के शैल संस्तर मिलते हैं उनमें प्राप्त जीवाश्मों का अध्ययन था डॉ. साह के शोध का विषय। उनके निर्देशक थे डॉ. आर. वी. सिथोले।

तब तक डॉ. साह का अध्ययन मुख्य रूप से शैलों में दिखाई पड़ने वाले, बड़े आकार के पत्तियों, राहजोम, फलों, बीजों आदि के जीवाश्मों का था। किंतु बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट में डॉ. साह ने अनुभव किया कि सूक्ष्म वनस्पति जीवाश्मों का संसार भी बड़ा अनोखा है। इतना ही नहीं इसमें शोध की अपार संभावनाएँ हैं और यह क्षेत्र काफी हद तक अछूता भी है। यह नहीं कि इसके पहले इस विषय में भारत में काम ही न हुआ हो। हो रहा था। स्वयं प्रो साहनी ने सिंध क्षेत्र (अब पाकिस्तान) की नमक की पहाड़ियों (सॉल्ट रेंज) के शैलों में ऐसे सूक्ष्म वनस्पति जीवाश्म पाये थे। परन्तु विश्व भर में अब इस विषय का महत्त्व तेजी से बढ़ रहा था विशेषकर पेट्रालियम भण्डारों की खोज में इसे अत्यन्त उपयोगी समझा जा रहा था इसलिये डॉ. साह ने इसे अपने आगे के अध्ययन का विषय बनाया।

हम सभी जानते हैं कि वनस्पतियों को वैज्ञानिकों ने मुख्य रूप से छः भागों में बांटा है। वे हैं शैबाल (एल्गी), कवक या फफूंद (फंगी), ब्रायोफाइट (दीवाल पर लगी काई या मॉस जैस पौधे), टेरीडोफाइट (फर्न आदि), जिम्नोस्पर्म (बिना फल वाले पेड़ जैसे ताड़ चीड़ आदि) तथा एंजियोस्पर्भ (फल एवं बीज युक्त पेड़)। इनमें शैवाल, कवक, ब्रायोफाइट तथा

टेरिडोफाइट में एक पौधे से दूसरे की उत्पत्ति बीजाणुओं (स्पोर) के द्वारा होती है। एंजियोस्पर्म में फूलों के अंदर परागकण (पॉलेन) होते हैं जो मादा केसर के साथ मिल कर नया बीजाण्ड बनाते हैं जिनसे बीजों द्वारा नये पौधों का निर्माण होता है। ये स्पोर तथा पॉलेन अत्यन्त सूक्ष्म (10 से 150 माइक्रॉन) होते हैं। इनका बाह्य कवच (एक्जाइन) अत्यन्त सुदृढ़ होता है अतः ये शैलों में लाखों करोड़ों वर्षों तक परिरक्षित रहते है। आकार में सूक्ष्म होने के कारण शैल की थोड़ी सी मात्रा जैसे। ग्राम में भी 5000 तक की संख्या में पाये जा सकते हैं। फिर पृथ्वी के इतिहास में भिन्न–भिन्न प्रकार के पौधे थे जिनके स्पोर तथा पॉलेन भी अलग–अलग प्रकार के थे। उदाहरण के लिये क्रटेशियस काल के पूर्व एंजियोस्पर्म थे ही नहीं। इसीलिये उस प्राचीन काल के शैलों में स्पोर तो मिल सकते हैं पर पॉलेन नहीं। इसलिये शैलों के कालनिर्धारण में भी ये अत्यन्त उपयोगी हैं। पेट्रोलियम की खोज करते समय वैज्ञानिकों को काफी गहराई में मिलने वाले शैलों के ड्रिलिंग द्वारा थोड़े से ही नमूने मिलते हैं। उतने ही शैल पदार्थ से उसकी आयु केवल सूक्ष्म जीवाश्मों की सहायता से निकाली जा सकती है। इसीलिये परागाणु विज्ञान या पैलीनॉलॉजी का महत्त्व पेट्रोलियम की खोज में बहुत अधिक माना जाता है।

डॉ. साह इस विषय के उच्च अध्ययन के लिये 1958–59 में फ्रांस में पेरिस स्थित इंस्टीट्यूट फ्रैंकाइस डे पेट्रोल गये जहाँ उन्होंने खनिज तेल परागाणु विज्ञान में विशेष दक्षता प्राप्त की। वापस आने के बाद साहनी इंस्टीट्यूट में वे भारत में पैलीनोंलॉजी के अध्ययन में जुट गये। विशेषकर पूर्वोत्तर भारत के खनिज तेल भण्डार क्षेत्रों के शैलों के परागाणु जीवाश्मों का उन्होंने गहरा अध्ययन किया। इस क्रम में कई शोध छात्रों का उन्होंने निर्देशन भी किया तथा अनेक युवा वैज्ञानिकों को इस विषय में प्रशिक्षित किया। उनके निर्देशन में नौ छात्रों ने पी.एचडी. की उपाधि प्राप्त की। परागाणुओं के आधार पर शैलों की आयु निर्धारित करना, स्तरक्रम सहसंबंध स्थापित करना तथा इस प्रकार किसी भी क्षेत्र का सम्पूर्ण भूवैज्ञानिक इतिहास समझना डॉ. साह के अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य रहे। अनेक वर्षों तक वे ऑयल इंडिया लि. के सलाहकार वैज्ञानिक रहे। दि 29 दिसंबर 1976 से 5 जनवरी 1977 तक लखनऊ में आयोजित चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय परागाणु विज्ञान संगोष्ठी के महामंत्री भी रहे। साहनी इंस्टीट्यूट में डॉ. साह सहायक निदेशक के पद पर थे तथा कुछ समय के लिये कार्यकारी निदेशक भी रहे। डॉ. साह ने हिमालय, विशेषकर लघु हिमालय के क्रोल बेल्ट का भी परामाणु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया। इसमें बी.एस.बेंकटाचला, आर.एन.लखनपाल, पी.के.मैथी, एस.एन. दुबे जैसे अन्य दक्ष परागाणु वैज्ञानिक उनके साथ थे।

सन् 1976 में डॉ. साह वाड़िया हिमालय भूविज्ञान संस्थान के प्रथम पूर्णकालिक निदेशक नियुक्त हुए। उस समय यह संस्थान दिल्ली विश्वविद्यालय में था। लेकिन शासन का यह मन था कि हिमालय के शोध से संबंधित संस्थान हिमालय क्षेत्र में ही होना चाहिये। इसलिये इसे देहरादून लाया गया। प्रारंभ में यह एक किराये के भवन में स्थापित हुआ परन्तु आज इसका अपना एक विशाल सुन्दर भवन निर्मित है। वाड़िया संस्थान की इस सम्पूर्ण प्रगति के मुख्य शिल्पी थे डॉ. एस.सी.डी. साह। उनके कार्यकाल में संस्थान ने वैज्ञानिक क्षेत्र में भी अभूतपूर्व उन्नति की और आज हिमालय भूविज्ञान के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह एक सर्वोच्च अनुसन्धान संस्थान के रूप में मान्यता प्राप्त है।

डॉ. साह ने अपने कार्यकाल में संस्थान के सभी वैज्ञानिकों को अपने–अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट अनुसंधान करने के लिये प्रोत्साहित किया; भिन्न–भिन्न उपविषयों के विशेषज्ञों को संस्थान में लाया और संस्थान की अकादमिक गतिविधियों को तेज गति प्रदान की। वे स्वयं भी हिमालय के कश्मीर से लेकर अरुणाचल प्रदेश तक प्रत्येक भाग में क्षेत्रीय अध्ययन के लिये गये तथा अलग–अलग भागों के परागाणु वैज्ञानिक शोध में संलग्न रहे।

गत दिनों अप्रैल 2012 के अंतिम सप्ताह में विज्ञान परिचर्चा की ओर से संपादक डॉ. मुकुन्द नीलकण्ठ जोशी तथा वाड़िया संस्थान के सेवा निवृत्त वैज्ञानिक डॉ. रफअत जमाल आज़मी ने डॉ. साह से मुलाकात की तथा विभिन्न विषयों पर उनके विचार जाने। प्रस्तुत है उस भेंट वार्ता के कुछ अंश।

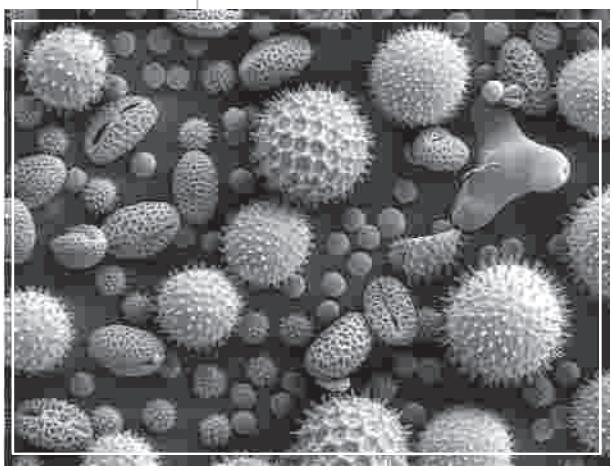

विज्ञान परिचर्चाः– डॉ. साह! कुमाऊँ के आन्तरिक पहाड़ी वातावरण से निकल कर एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त परागाणु वैज्ञानिक जैसे विशिष्ट ज्ञान की शाखा के मान्य विद्वान् बनने की आपकी यात्रा के बारे में जानना परिचर्चा के पाठकों के लिये रुचिकर होगा।

साहः– मेरी प्रारंभिक शिक्षा बीरबट्टी तथा अल्मोड़ा में हुई। आगे की पढ़ाई करने अलाहाबाद विश्वविद्यालय गया। उस समय पहाड़ के अधिकांश विद्यार्थी अलाहाबाद ही पढ़ने जाते थे। किंतु उस समय क्या पढ़ना चाहिये इस संबंध में कोई विशिष्ट ध्येय निश्चित नहीं था। एक विचार था सेना में जाने का। इसलिये मैने बी.एससी. के लिये प्राणी विज्ञान, वनस्पति विज्ञान के साथ–साथ सैन्य विज्ञान विषय चुन लिया। अलाहाबाद में मैने एक वर्ष पढ़ाई की। पर उन्हीं दिनों प्रो. बीखल साहनी जो लखनऊ विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान के प्राध्यापक थे इलाहाबाद आये थे। वे मेरे पिताजी के पूर्व परिचित थे। जब मैं उनसे मिला तो उन्होंने सलाह दी कि मुझे लखनऊ आ जाना चाहिये तथा वनस्पति विज्ञान के साथ भूविज्ञान पढ़ना चाहिये। प्रो. साहनी की प्रेरणा से मैं लखनऊ आ गया। भू–विज्ञान में एम.एससी. किया। उन्हीं के पदचिन्हों पर चलते हुए पुरावनस्पति विज्ञान में आगे पढ़ाई की। इस प्रकार आज जो कुछ भी मैं हूँ वह प्रो. बीरबल साहनी के कारण।

विज्ञान परिचर्चाः– प्रो. साहनी के अलावा आप अन्य किन–किन विद्वानों से विशेष प्रभावित हुए?

साहः— उन दिनों लखनऊ विश्वविद्यालय तथा साहनी संस्थान में एक से एक श्रेष्ठ वैज्ञानिक कार्यरत थे। मैं सबके संपर्क में आया और सबसे कुछ न कुछ सीखा। अब किस—किस के नाम गिनाऊँ। डॉ. सुरंगे, डॉ. सिथोले, ए.एस.आर. नारायाण राव आदि अनेक थे। मेरे साथ भी अनेक श्रेष्ठ सहयोगी थे। शोध का बहुत अच्छा वातावरण था।

विज्ञान परिचर्चाः— पुरावनस्पति विज्ञान तो अपने में विज्ञान की एक विशिष्ट शाखा है ही पर उससे भी अधिक विशिष्ट विषय है परागाणु विज्ञान। आप उसके बारे में कुछ बताइये।

साहः— परामाणु विज्ञान एक मिश्रित विज्ञान है। प्राचीन काल के शैलों में मिलने वाले अत्यन्त सूक्ष्म स्पोर और पॉलेन का अध्ययन वनस्पति विज्ञानी भी करते हैं और भूविज्ञानी भी। वनस्पति वैज्ञानिकों के लिये वे पेड़ों के भाग हैं। भूवैज्ञानिकों के लिये वे अवसाद (सेडिमेंट) के भाग। पर जिन पेड़ों के वे भाग हैं वे पेड़ कहीं है कि नहीं पता नहीं। हमें तो केवल स्पोर और पॉलेन ही मिलते है। हमें उनका ही अध्ययन करना होता है तथा उसी के आधार पर उन शैलों का पूरा इतिहास अर्थात् वे कब बने, किस वातावरण में बने आदि सारा पता लगाना होता है। उन भिन्न—भिन्न प्रकार के स्पोर तथा पॉलेन जीवाश्मों का नामकरण अपने में एक गहन अध्ययन का विषय हो जाता है।

विज्ञान परिचर्चाः— परामाणु विज्ञान जैसे अत्यन्त छोटे दायरे वाले विषय के विशेषज्ञ होकर जब आप वाड़िया हिमालय भूविज्ञान संस्थान जैसे संस्थान के निदेशक बने जहाँ लगभग दो हजार किमी लंबी और औसतन दो सौ किमि चौड़ी एक विशाल पर्वत श्रृंखला का अध्ययन होता है तो वहाँ आपने अपने को कैसे उपयोगी पाया?

साहः— आपने ठीक कहा। हिमालय पर्वत श्रृंखला एक विशाल क्षेत्र है। इसके अध्ययन के अनेक आयाम हैं। परन्तु हर एक आयाम अपने में अधूरा है। यह आठ अंधे व्यक्तियों द्वारा हाथी के किये जाने वाले अध्ययन के समान है। संरचनात्मक तथा विवर्तनिक अध्ययन (स्ट्रक्चर तथा टेक्टॉनिक्स), शैल विज्ञान (पेट्रोलॉजी), जीवाश्म विज्ञान (पैलिऑण्टोलॉजी) सबका महत्त्व है। पर सारे अलग—अलग मार्गों से चलकर एक लक्ष्य तक पहुँचने का नाम हिमालय भूविज्ञान है। तो जब मैं इस संस्थान में आया तो मैंने यही उद्देश्य सामने रखा। पहले से ही यहाँ कुछ बड़े अच्छे वैज्ञानिक कार्य कर रहे थे। डॉ. वल्दिया, डॉ. ठाकुर, डॉ. टंडन, डॉ. जैन आदि थे ही। मैने भी अलग—अलग विषयों के विशेषज्ञों को लाना प्रारम्भ किया। एक बड़ी अच्छी टीम बन गई। सबने मिल कर हिमालय को समझना प्रारम्भ किया।

विज्ञान परिचर्चाः— वाड़िया संस्थान के आप पहले नियमित निदेशक रहे है। जब आप यहाँ आये तो आपके कुछ सपने होंगे, कुछ कल्पनाएँ होंगी। जब आप सेवानिवृत्त हुए तब की उस संस्थान की स्थिति को देखकर क्या आप संतोष का अनुभव कर रहे हैं?

साहः— एकदम पूरी तरह से। मैं जब आया तब हम सबने मिलकर आगामी पचास वर्ष का एक कार्यक्रम बनाया। आज संस्थान दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति करते हुए उसी मार्ग पर जा रहा है। जब हम देहरादून में संस्थान को लाये तो सबसे पहला काम था अपना भवन बनबाने का। इस कार्य के लिये संस्थान की गवर्निंग काउंसिल के अध्यक्ष सत्येश्वर प्रसाद नौटियाल जी ने बहुत प्रयास किया। उसीका फल है कि आज संस्थान 14 एकड़ भूमि पर शानदार स्वरूप में खड़ा है। हमने संस्थान का एक उत्कृष्ट पुस्तकालय बनाया। संस्थान का संग्रहालय अत्यन्त समृद्ध है। वैज्ञानिक अध्ययन के क्षेत्र में भी हमने बहुत उच्च उद्देश्य सामने रखे थे। कश्मीर से लेकर अरुणाचल प्रदेश तक दुर्गभ से दुर्गभ भागों में हमारे वैज्ञानिकों के दल प्रतिवर्ष जाते थे तथा भूविज्ञान के विविध आयामों से अध्ययन करते थे। हमने बड़े—बड़े सपने देखे और पूरे किये। मैं सचमुच पूर्ण रूप से संतुष्ट हूँ।

विज्ञान परिचर्चाः— आप जैसे वरिष्ठ वैज्ञानिक आगे आने वाली पीढ़ी के लिये निश्चित रूप से प्रेरणास्रोत हैं। एक अच्छा शोधकर्ता तथा वैज्ञानिक बनने के लिये विद्यार्थी में क्या गुण होने चाहिये?

साहः— सबसे पहली तथा महत्त्वपूर्ण बात है कि आप की आपके कार्य में रुचि होनी चाहिये। हर व्यक्ति की कुछ हॉबी होती है। रिसर्च ही यदि हॉबी बना लेंगे तभी कुछ कर सकते हैं। दूसरा उतना ही महत्त्वपूर्ण मुद्दा है ईमानदारी का। अपने कार्य की प्रति पूर्ण निष्ठा होनी चाहिये। तीसरी आवश्यकता है सही गुरु को पानी की। ये बातें हों तो शोध कार्य में निश्चित रूप से सफलता मिलेगी।

विज्ञान परिचर्चाः— डॉ. साह! आपने हमारे अनुरोध को स्वीकार किया तथा हमें इतना समय दिया। हम जानते हैं कि इस समय आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। फिर भी आपने परिचर्चा के साथ इनती चर्चा की इसलिये हम परिचर्चा परिवार की ओर से आभार व्यक्त करते हैं तथा आपके शीघ्र स्वास्थ्य लाभ तथा दीर्घायु की कामना करते हैं।

मैं डॉ. सतीश चन्द्र दास साह के कार्यकाल में वाड़िया संस्थान में आया। इसलिये प्रारंभिक वर्षों में मुझे उनके सान्निध्य और मार्गदर्शन में कार्य करने का अवसर मिला।

डॉ. साह की वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा उनके व्यक्तिगत गुणों को देखकर लगता है कि प्रसिद्ध शायर बशीर बद्र ने यह शेर शायद उन्हीं के लिये लिखा है—

'कहीं और बख्श दे शोहरतें
कहीं और बांट दे इज्जतें
मेरे पास है मेरा आईना
मैं कभी न गर्दोगुबार लूँ'

अशोक दुबे
वाड़िया हिमालय भूविज्ञान संस्थान,
देहरादून

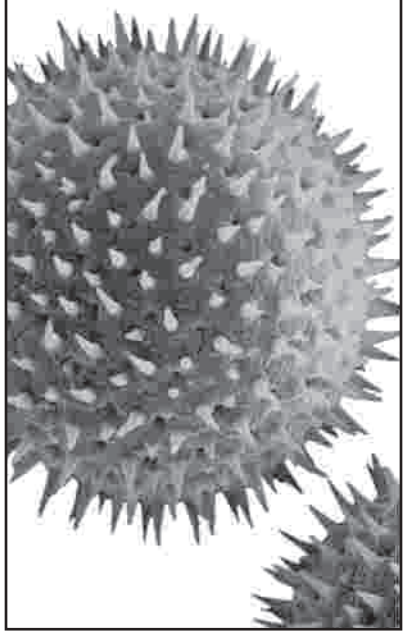

उत्तराखण्ड के
विज्ञान संस्थान 5

गोविन्द बल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण एवम् विकास संस्थान

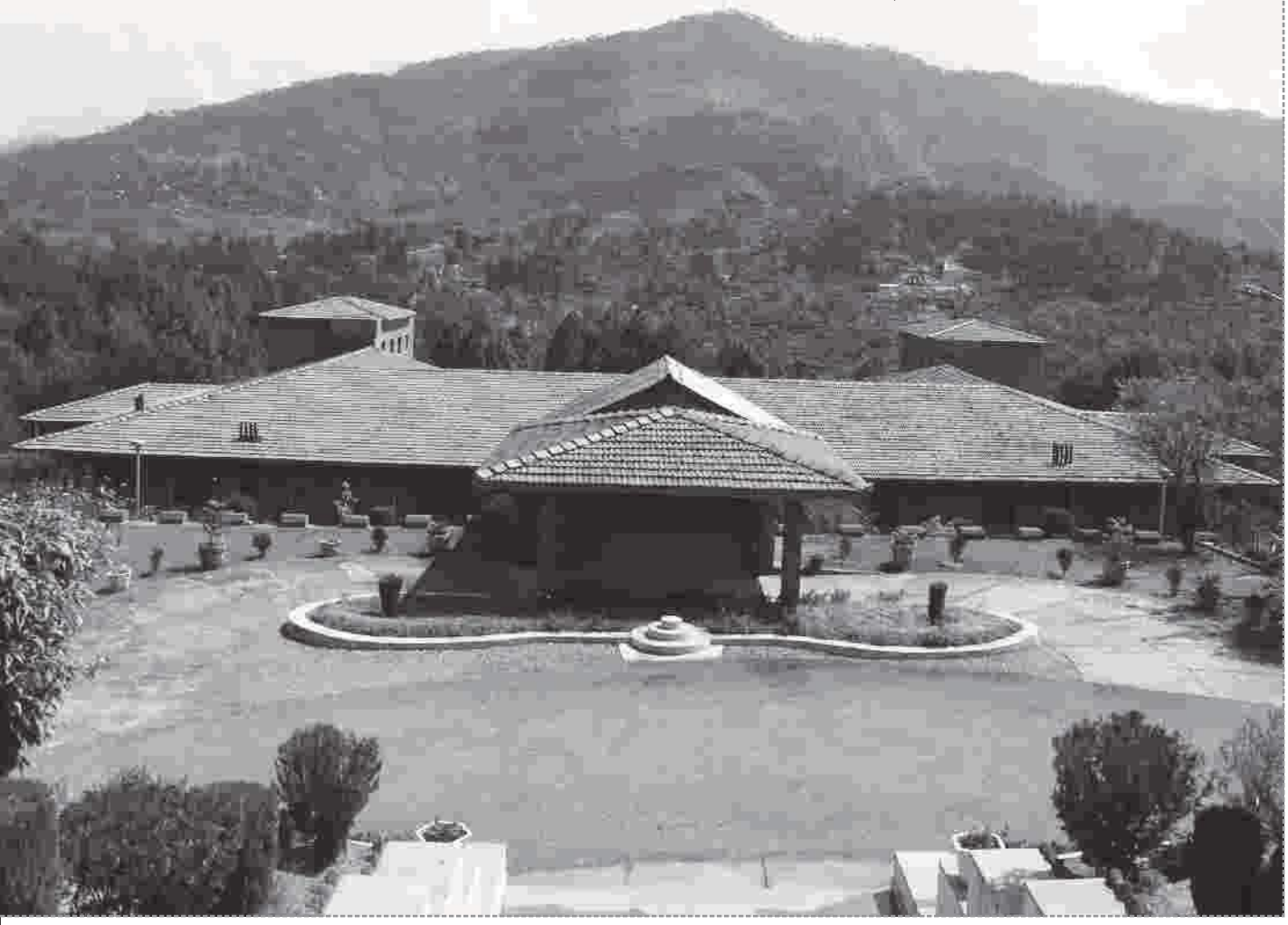

गोविन्द बल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण एवम् विकास संस्थान, पर्यावरण एवम् वन मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्तशासी संस्थान के रूप में, भारत रत्न पं0 गोविन्द बल्लभ पन्त के जन्म शताब्दी वर्ष 1988 में स्थापित किया गया। वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार और समेकित प्रबंधन रणनीतियों को विकसित करने तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में उनकी क्षमता के प्रदर्शन तथा सम्पूर्ण भारतीय हिमालय क्षेत्र में सुदृढ़ पर्यावरणीय विकास को सुनिश्चित करने के लिए संस्थान को एक केंद्रीय संस्था के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई है। सामाजिक–सांस्कृतिक, पारिस्थितिकीय, आर्थिक और भौतिक प्रणालियॉ ही भारतीय हिमालयी क्षेत्र (आई0एच0आर0) के सतत् विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकती हैं। अतः इस तथ्य को स्वीकारते हुए यह संस्थान इन प्रणालियों के बीच गहनतम संबंधों में संतुलन बनाए रखने का सजग प्रयास करता है। लक्ष्य की प्राप्ति हेतु संस्थान के सभी अनुसंधान और विकास कार्यक्रमों में प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों के परस्पर सामंजस्य पर विशेष बल देने के साथ–साथ बहुआयामी और समग्र दृष्टिकोण का अनुसरण किया जाता है। इस प्रयास में संवेदनशील पर्वतीय पारि–प्रणालियों को संरक्षित करने और प्राकृतिक संसाधनों के सतत् उपयोग पर विशेष ध्यान दिया जाता है। विभिन्न कार्यक्रमों की दीर्घकालीन स्वीकार्यता और सफलता को सुनिश्चित करने हेतु स्थानीय जनता की भागीदारी के सजग प्रयास किये जाते हैं। अतः विभिन्न स्टेकहोल्डरों के लिए प्रशिक्षण और पर्यावरणीय शिक्षा एवम् जागरूकता, संस्थान के सभी अनुसंधान और विकास कार्यक्रमों के अनिवार्य घटक हैं।

इकाइयाँः–

- गोविन्द बल्लभ पंत पर्यावरण एवं विकास संस्थान हिमांचल इकाई, मोहल–कुल्लु, हिमांचल प्रदेष।
- गोविन्द बल्लभ पंत पर्यावरण एवं विकास संस्थान गढ़वाल इकाई, ऊपरी भक्तियांना, श्रीनगर–गढ़वाल, उत्तराखण्ड।
- गोविन्द बल्लभ पंत पर्यावरण एवं विकास संस्थान सिक्किम इकाई, पांगथांग, सिक्किम।
- गोविन्द बल्लभ पंत पर्यावरण एवं विकास संस्थान, पूर्वोत्तर इकाई, विवेक विहार, इटानगर, अरुणाचल प्रदेश।

उद्देश्य :–

- भारतीय हिमालय क्षेत्र (आई0एच0आर0) की पर्यावरणीय समस्याओं पर गहनतम अनुसंधान एवम् विकास मूलक अध्ययन करना।
- पर्यावरण संबंधी स्थानीय ज्ञान का अनुज्ञापन और सुदृढ़ीकरण तथा इण्टरेक्टिव नेटवर्किंग के माध्यम से हिमालय क्षेत्र में कार्यरत वैज्ञानिक संस्थानों, विश्वविद्यालयों/गैर सरकारी और स्वयंसेवी संस्थाओं के पारस्परिक सम्पर्क एवम् सहयोग द्वारा क्षेत्रीय प्रासंगिकताओं से संबंधित शोध कार्यों में योगदान देना।
- स्थानीय अवधारणाओं के सामंजस्य से क्षेत्र के सतत् विकास के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकीय पैकेजों और वितरण प्रणालियों का विकास और प्रदर्शन करना।

अनुसंधान और विकास के विषयः–

स्टेकहोल्डरों की आवश्यकता के अनुरूप संस्थान के अनुसंधान और विकास कार्यक्रमों को तीन क्रियाशील वर्गों और छः विषय–क्षेत्रों में, पुनः वर्गीकृत किया गया हैः

वर्ग 1

- समाजिक – आर्थिक विकास (एस0 ई0 डी0)
- पर्यावरणीय विश्लेषण और प्रबंधन (ई0 ए0 एम0)

वर्ग 2

- जलागम प्रविधियॉ और प्रबंधन (डब्ल्यू0 पी0 एम0)
- ज्ञान उत्पाद और क्षमता निर्माण (के0 सी0 बी0)

वर्ग 3

- जैवविविधता संरक्षण और प्रबंधन (बी0 सी0 एम0)
- जैव–प्रौद्योगिकीय अनुप्रयोग (बी0 टी0 ए0)

अनुसंधान और विकास की प्राथमिकताएं :–

- जलागम सेवाएं, प्रबंधन और भू–उपयोग नीति
- घरेलू ऊर्जा की आवश्यकता–सम्भावनाएं एवम् चुनौतियां
- हिमालयी कृषि प्रणालियों की आर्थिक और पारितंत्रीय दृष्टि से उन्नत उपादेयता
- जैवविविधता का संरक्षण और सतत् उपयोग
- संरक्षित क्षेत्र – प्रबंधन एवम् समाधान
- सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय प्रभाव विश्लेषण– विशेषरूप से हिमालय क्षेत्र के संदर्भ में
- आपदा प्रबंधन एवम् निराकरण– आधारीय आंकड़े एवम् ज्ञान उत्पाद
- नगरीय क्षेत्रों का पर्यावरणीय प्रबंधन
- सतत्– पर्यटन
- हिमालय में उद्यमशीलता तथा स्वरोजगार
- देशज ज्ञानः पारम्परिक जीवन– शैली, भवन निर्माण कला एवम् स्वास्थ्य सुरक्षा पद्धतियॉ
- पलायनः सामाजिक–आर्थिक एवम् सांस्कृतिक समस्याएं
- पर्यावरणीय पुनर्स्थापन में जैवप्रौद्योगिकी का उपयोग
- पर्वतीय पारितंत्र और पर्यावरण हेतु संसाधन सामग्री
- क्षमता निर्माण तथा तकनीक हस्तांतरण एवम् स्वीकार्यता
- ग्रामीण पारितंत्र के सतत् विकास हेतु संसाधन प्रबंधन
- उच्च मूल्य के पादपों हेतु संवर्धन पैकेज
- भारतीय हिमालय क्षेत्र में समेकित परि–विकास अनुसंधान कार्यक्रम (आई0 ई0 आर0 पी0)
- परि–पुनर्स्थापन एवम् संरक्षण मॉडल
- आजीविका की सम्भावनाएं
- क्षमता निर्माण एवम् दक्षता विकास

- संजाल (नेटवर्किंग)
- प्रकाशन तथा अभिलेखन

मुख्य उपलब्धियाँ :–

- हिमालय में अवकृमित भूमि के पुनर्वास हेतु स्वीट (ढलुवा जलागम पर्यावरणीय अभियांत्रिकी प्रौद्योगिकी) पैकेज का विकास एवम् प्रदर्शन
- मध्य एवम् पूर्वोत्तर हिमालय में कृषि–वानिकी मॉडलों और कम लागत की तकनीकियों पर केन्द्रित समेकित जलागम प्रबंधन का प्रदर्शन
- उत्तराखंड में स्वजल कार्यक्रम के अंतर्गत जल संभरण क्षेत्र की सुरक्षा हेतु स्प्रिंग सेन्चुरी कन्सेप्ट का कार्यान्वयन
- मध्य हिमालय में ग्लेशियरों के सिकुड़ने, बहने और प्रलम्बित अवसाद के पैटर्न के आधारीय आंकड़े
- जल विद्युत परियोजनाओं हेतु पर्यावरणीय प्रभाव विश्लेषण/पर्यावरणीय प्रबंधन योजना
- फूलों की घाटी (उत्तराखंड) के लिए ठोस अपशिष्ट प्रबंधन; हिमाचल प्रदेश के लिए संवहन क्षमता का आंकलन एवम् परिवेशी वायु की निगरानी
- ढलान स्थिरीकरण हेतु पर्वतीय जोखिम अभियांत्रिकी तकनीकी का प्रदर्शन और उत्तराखंड एवम् सिक्किम में भू–पर्यावरणीय आपदाओं का आंकलन
- पर्वतीय क्षेत्र में स्थान विशेष की योजना हेतु दिशा निर्देश, वर्षा जल संचयन और हरित सड़क विचारधारा का क्रियान्वयन; शिवालिक क्षेत्र के विकास हेतु कार्य योजना तथा ग्रामीण पर्यावरण कार्य योजना (व्हीप)
- भारतीय हिमालय क्षेत्र की जैव–विविधता के संरक्षण हेतु कार्य योजना; और राष्ट्रीय जैवविविधता रणनीति एवम् कार्य योजना के अंतर्गत वन्य पादप विविधता के लिए रणनीति एवम् कार्य योजना
- सिक्किम में पर्यावरणीय–पर्यटन को बढ़ावा देकर, संस्थान मुख्यालय में ग्रामीण तकनीकी परिसर की स्थापना और पूर्वोत्तर में पर्वतीय संदर्भ की कम लागत की तकनीकों का प्रशिक्षण देकर, स्थानीय जनता की क्षमता का विकास करना
- उपलब्ध विशेषज्ञता का अग्रांकित में कार्यान्वयन– (i) संरक्षण शिक्षा का प्रसार एवम् प्रचार बढ़ाना (ii) बद्रीवन (बद्रीनाथधाम का प्राचीन धार्मिक–वन) के पुनर्स्थापन हेतु लोगों की धार्मिक भावनाओं का सदुपयोग (iii) प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन में जनमानस को भावनात्मक भागीदारी
- समेकित पर्यावरणीय–विकास अनुसंधान कार्यक्रम के अंतर्गत क्षेत्र विशेष के शोध तथा विकास कार्यक्रम एवम् मानव संसाधन विकास का सु. ढ़ीकरण
- औषध पादपों के विस्तृत सूचीकरण, उनकी स्थिति का आकलन, विभिन्न आवासों में उनकी संख्या के अध्ययन तथा उच्च मूल्य की प्रजातियों के कृषिकरण में सुधार द्वारा जड़ी–बूटी औद्योगिक क्षेत्र को बढ़ावा देना
- थुनेर के संरक्षण और संवर्धन हेतु प्रविधियों का विकास
- पर्वतों में पौधों की वृद्धि में सुधार हेतु सूक्ष्मजीवी इनोकूलेंट्स का अवकलन
- भारतीय हिमालय क्षेत्र के उच्च मूल्य के पौधे जैसेः बहुउद्देश्यीय वृक्ष, स्थानिक औषध पादप, बॉस और रोपण हेतु अन्य प्रजातियाँ इत्यादि के लिए पारम्परिक और/अथवा जैव प्रौद्योगिकीय विधियों का विकास
- चयनित जनजातियों की देशज ज्ञान प्रथाएं और देशज ज्ञान प्रथाओं का डिजिटल लाइब्रेरी

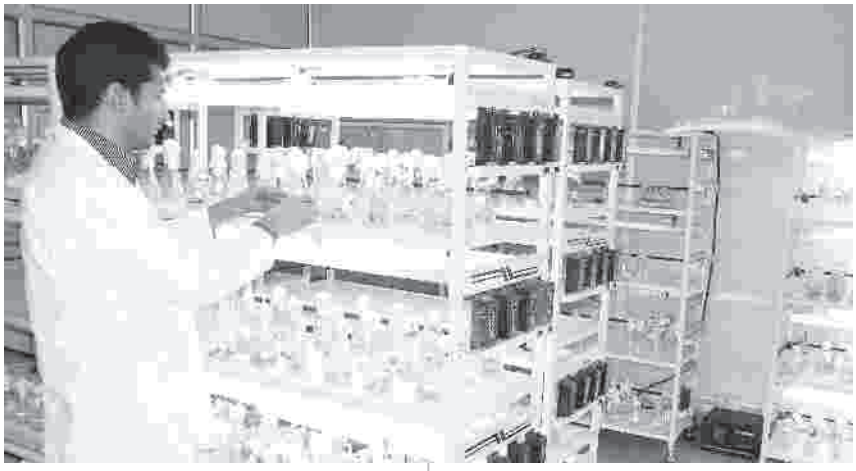

सुविधाएं :–

- पुस्तकालय एवम् सूचना केन्द्र
- इन्टरनेट तथा वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग
- ऊतक संवर्धन प्रयोगशाला
- रिमोट सेंसिंग तथा भूगर्भीय सूचना प्रणाली प्रकोष्ठ
- जी0 पी0 एस0 संदर्भ केन्द्र
- मृदा, जल और पादप विश्लेषण प्रयोगशालाएं
- बहु–स्थलीय मौसम निगरानी केन्द्र
- हिमालयी पारिस्थितिकी पर पर्यावरणीय सूचना प्रणाली केन्द्र
- हिमालयी जैव आरक्षों हेतु अग्रणी केन्द्र
- अभिलेखन प्रकोष्ठ
- इसीमोड प्रकोष्ठ
- ग्रामीण तकनीकी परिसर
- हिमनद अध्ययन केन्द्र
- आपदा प्रबंधन संकाय
- केन्द्रीय संयंत्र प्रयोगशाला
- प्रकृति विश्लेषण (व्याख्या) और ज्ञानार्जन केन्द्र
- वृक्षोद्यान तथा पौधशालाएं
- जड़ी–बूटी उद्यान
- ग्रीन हाउस/पॉलीहॉउस
- वीडियोग्राफी
- परियोजना तैयार करना
- परामर्शीय कार्य
- प्रशिक्षण, कार्यशालाएं तथा संगोष्ठियॉ

निदेशक
गोविन्द बल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण एवम् विकास संस्थान
कोसी–कटारमल, अल्मोड़ा–263 643, उत्तराखंड, भारत

के.के.झा

पृथ्वी के वायुमंडल का मौलिक रुप से कार्बन डाइआक्साइड गैस द्वारा प्रदूषण तथा संचार माध्यम का विद्युत चुम्बकीय प्रदूषण दोनों ही लगभग खतरे के निशान के पास पहुँच चुका है। हमारा वायुमंडल और रेडियो वर्णक्रम दोनों ही मूल्यवान प्राकृतिक संसाधन हैं।

विद्युत चुम्बकीय तरंग द्वारा

संचार माध्यम का प्रदूषण

एवं उसके प्रभाव

विविध उपयोगी संचार संयन्त्र, दूर संवेदी इलेक्ट्रानिक उपष्कर, चलित फोन सेवा एवं विभिन्न अवृत्ति के रेडियो तरंग उत्पन्न करने वाले आधुनिक उपकरणों की बढ़ती लोकप्रियता तथा सूचना तकनीकी के चहुँमुखी विकास ने जहाँ मानव जीवन को आरामदायक व सहज बना दिया है वहीं यह अपने साथ कई समस्याओं को जन्म दे रहा है। विकसित और विकासशील दोनों ही प्रकार के राष्ट्र, संचार माध्यम के विद्युत चुम्बकीय प्रदूषण से बढ़ते खतरे को अनुभव करने लगे हैं।

पृथ्वी के वायुमंडल का मौलिक रुप से कार्बन डाइआक्साइड गैस द्वारा प्रदूषण तथा संचार माध्यम का विद्युत चुम्बकीय प्रदूषण दोनों ही लगभग खतरे के निशान के पास पहुँच चुके हैं। हमारा वायुमंडल और रेडियो वर्णक्रम दोनों ही मूल्यवान

प्राकृतिक संसाधन हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सीमा की परवाह किए बगैर समूचे भूमण्डल में समान रुप से सबके द्वारा इस संसाधन का उपयोग किया जाता है। प्रगति के इस दौड़ में हो रहे प्रदूषण को किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा या महाशक्ति की ताकत बाँधकर नहीं रख सकती है। विद्युत चुम्बकीय प्रदूषण, आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के बढ़ते उपयोग के कारण आने वाले समय में केवल तकनीकी ही नहीं बल्कि आर्थिक समस्या बनकर मुखरित होगी। विद्युत चुम्बकीय प्रदूषण के सारे स्रोत/उदगम आधुनिक समाज को समृद्धि देने के लिए जहाँ उपयोगी हैं वहीं समाज के आर्थिक विकास में प्रयुक्त इलेक्ट्रानिकी कृत मशीनों तथा सुरक्षा में प्रयुक्त संचार साधन तथा दूर संवेदी उपकरण अभिशाप साबित हो रहे हैं। 1960 के दशक में जब रेडियो तथा रडार की संख्या कम थी तथा इन उपकरणों से विकसित ऊर्जा का अनुपात कम था, किसी भी राष्ट्र ने विद्युत चुम्बकीय प्रदूषण की कल्पना नहीं की थी। परन्तु आज इलेक्ट्रानिक संचालित भारी मशीनों की संख्या इतनी बढ़ गई है कि विद्युत चुम्बकीय प्रदूषण का जहर, हमारे विकास को काफी प्रभावित कर सकता है। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में चल रहे प्रयास व्यर्थ हो सकते हैं अगर समय रहते इस प्रदूषण से बचाव के समुचित उपाय नहीं किए जाते हैं।

सूचना तकनीकी का चहुँमुखी विकास दूरियों को सिमटाने में कामयाब हुआ है। इन्टरनेट द्वारा विश्व बाजार की सैर मिनटों में की जाने लगी है। कम्प्यूटर की गति, डाटा धारक क्षमता एवं डाटा विश्लेषण की गति सत्तर के दशक की तुलना में कई हजार गुना बढ़ी है। कम्प्यूटर करोड़ों–अरबों गणितीय गणनाएँ प्रति सेकेन्ड की दर से कर सकता है। सच पूछिए तो मनुष्य जो कुछ भी सोचता है कम्प्यूटर उसे कार्य रुप देने में सक्षम है। सन् 1989 में जब वायजर II उपग्रह नेप्च्यून ग्रह के पास पहुँचा तो साइमुलेटेड गणना और वास्तविक गणतव्य के बीच मात्र 21 मील का अंतर था। साथ ही सिर्फ 25 सेकेन्ड देर से वह अपने गन्तव्य पर पहुँचा। वायजर से सम्वाद लेने और देने की प्रक्रिया में विद्युत चुम्बकीय तरंग का उपयोग किया गया। इतिहास में अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए यह मील का पत्थर साबित हुआ।

वायजर ने लगभग पाँच ट्रीलियन डाटा बिट्स नासा (अमेरिका) को भेजे। वर्तमान कम्प्यूटर क्षमता को कई दशक उनके विश्लेषण में लग सकते हैं। वर्तमान में दूर संवेदी उपग्रहों से विश्व भर में जितना डाटा बिट्स भेजा जाता है उनका विश्लेषण करने में मनुष्य को कई जीवन जीने होंगे। अतः आज का मानव मशीनी क्षमता के अधिकार क्षेत्र के आगे बौना हो गया है। मशीन की आवश्यकता प्रति दिन बढ़ती जा रही है।

दो राष्ट्रों के बीच बढ़ती वैज्ञानिक एवं तकनीकी स्पर्धा ने हमें लाचार कर दिया है। हम किसी से पीछे नहीं रहना चाहते, हमारी आवश्यकताएँ बढ़ रही हैं और इसी अनुपात में हमारे दैनिक जीवन में इलेक्ट्रानिक उपकरणों की भागेदारी भी बढ़ रही है। साथ ही बढ़ रही है उत्सर्जित विद्युत चुम्बकीय तरंग की अनचाही मात्रा।

विद्युत चुम्बकीय इन्टरफेरेन्स एक समस्या :–

मानव जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु लगभग हर क्षेत्र को, जहाँ भी विकास संभव है, मशीनीकृत किया गया है। मशीन को इलेक्ट्रानीकृत कर उसकी क्षमता कई गुणा बढ़ाई गई है। माइक्रोप्रोसेसर कन्ट्रोल के द्वारा व्यावसायिक एवं सुरक्षा प्रतिष्ठानों का स्वसंचालन किया गया है। भारी वाहनों द्विचक्रयान एवं चार चक्र वाहन की भरमार सड़कों पर हो जाने से दूरियों को सिमट दिया गया है परन्तु ये सभी भिन्न रेडियो आवृत्ति तरंग के स्रोत बन गए हैं। रेडियो तरंग की एक स्वाभाविक प्रकृति होती है, उसका विकिरण चारों दिशाओं में प्रकाश की गति से फैलता है। अगर इन उत्सर्जित ऊर्जा की क्षमता एवं तरंग दैर्ध्य व्यापारिक या सुरक्षा संस्थान या निजी प्रतिष्ठान में लगे इलेक्ट्रानिक उपकरण की क्षमता से अधिक है तो वह उसके चालक तन्तु पर अपना प्रभाव दिखाएगा। उस मशीन की क्रियाशीलता पूरी तरह नष्ट हो सकती है या वह निष्क्रिय हो सकता है। औद्योगिक प्रतिष्ठान, शिक्षा संस्थान अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, विदेश संचार में प्रयुक्त इलेक्ट्रानिक उपस्करों को निश्चित रुप से विद्युत चुम्बकीय कम्पैटीबिलीटी का पालन करना होगा। अन्यथा ये सभी यन्त्र निष्क्रिय हो सकते हैं। इनका डाटा बिट्स करप्ट हो सकता है।

संचार परिपथ एवं डाटा बेस प्रबन्धन :–

जिस प्रकार यातायात हेतु सड़क, रेल सेवा या वायु सेवा तथा सिंचाई के लिए नहर, टयूब वेल आदि की जरुरत होती है उसी प्रकार सूचना तकनीकी में सूचना आदान–प्रदान हेतु आप्टिकल फाइवर, डिजिटल वियरर, विभिन्न आवृत्ति वाले केबुल, रेडियो तरंग उत्पन्न करने हेतु अनेक स्रोत यथा सूक्ष्म तरंग नलिका, क्लाइस्ट्रान, मैग्नेट्रान तथा ठोसावस्था इलेक्ट्रानिकी के लो पावर डिवाइस आदि की जरूरत होती है। तभी हम अपेक्षित डाटा बेस का भरपूर इस्तेमाल कर सकते हैं।

लोकल एरिया नेटवर्क :–

लोकल एरिया नेटवर्क का अधिकतम फैलाव चारों दिशाओं में 2.5 किमी तक सीमित होता है। इसमें मूल रुप से दो कम्प्यूटरों को केबुल द्वारा जोड़कर डाटा बेस प्रबन्धन एवं सूचना का आदान प्रदान किया जाता है।

वाइड एरिया नेटवर्क :–

लोकल एरिया नेटवर्क के सिद्धान्त पर ही वाइड एरिया नेटवर्क की नींव पड़ी है जो कालान्तर में अर्थ एरिया नेटवर्क का रुप ले रही है। अर्थात् कई कम्प्यूटर केबल द्वारा सर्वर के माध्यम से जुड़े होंगे।

इन कम्प्यूटरों में प्रयुक्त केबुल आसानी से हवा में व्याप्त विद्युत चुम्बकीय इनटरफेरेंस के शिकार बन सकते है। विद्युत चुम्बकीय तरंग की वलय केबुल के साथ चलकर डाटा बिट्स को करप्ट कर देती है और इस प्रकार दैनिक जीवन के लिए उपयोगी नेटवर्क सेवा निष्क्रिय हो जाती है।

अन अपेक्षित रेडियो तरंग के स्रोत :–

इलेक्ट्रानिक उपस्करों को प्रभावित करने वाले रेडियो तरंगों के मूल तीन स्रोत हैं।

1. मानव जनित रेडियो आवृत्ति इन्टरफेरेंस
2. इलेक्ट्रोस्टेटिक डिसचार्ज
3. लाइटनिंग डिसचार्ज

मानव जनित रेडियो आवृत्ति इन्टरफेरेंस के कारण टेलीफोन एक्सचेंज की लोकल

सेवा, जहाँ इनपुट/आउटपुट के कई लाइनें उपलब्ध रहती हैं, निष्क्रिय हो जाता है। इससे सूचना तकनीकी में लगे संयंत्र तथा दूर संचार में प्रयुक्त उपकरण दोनों ही प्रभावित होते हैं।

- प्रचलित संचार संयंत्र आम्पलीचुड मोडुलेशन द्वारा कार्य करते हैं। विद्युत चुम्बकीय इन्टरफेरेंस इनमें नान लिनियरीटी डाल देता है, डाटा करप्ट हो जाती है और सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है।

- बेस स्टेशन द्वारा लगाए गए संचार उपकरण एवं रडार उच्च शक्ति की रेडियो आवृत्ति उत्पन्न करते हैं क्योंकि सामरिक महत्व के सुरक्षा कार्य में इनका उपयोग होता है। विशेष परिस्थितियों में उत्सर्जित रेडियो आवृत्ति की ऊर्जा 250 वोल्ट तक देखी गई है। साधारण सेवा में प्रयुक्त लो पावर संचार उपकरण के **भोआयस** एवं डाटा बेस दोनों ही इनसे करप्ट हो जाता है। उपस्कर में प्रयुक्त लाजिक डिवाइसेज एवं मेटल आक्साइड सेमी कन्डक्टर डिवाइसेज इसके आसान शिकार हैं।

- वेल्डिंग मशीन और डायाथर्मी उपकरण उच्च शक्ति के चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करते हैं और उसका प्रभाव आश्चर्यजनक दूरी तक होता है। इनकी आपरेटिंग आवृत्ति 27 मेगाहर्ज होती है जो कम्प्यूटर के पावर लाइन या डाटा लाइन द्वारा वलय बनाकर यन्त्र की क्षमता नष्ट करने में सक्षम हैं। पृथ्वी की सतह एवं वातावरण में प्राकृतिक चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति लगभग 0.8 गौस या 0.08 मी टेस्ला होती है। मशीन द्वारा उत्पन्न चुम्बकीय क्षेत्र प्राकृतिक चुम्बकीय क्षेत्र को आधार बनाकर आसानी से बगैर ऊर्जा हानि किए हमारे संयंत्र को अपना शिकार बना लेती है।

इलेक्ट्रोस्टेटिक डिस्चार्ज (ईएसडी)

किसी भी इलेक्ट्रानिक उपस्कर के निर्माण के समय ही अगर सही बचाव न किए जाएँ तो सेंसिटिव कम्पोनेंट (बहु उपयोगी) को जला देती है या निष्क्रिय कर देती है। ऐसा देखा गया है कि सिस्टम हर प्रकार से जे एस पेन्टा फाइव तथा मिलिटरी इ एम आई स्टेन्डर्ड को मान रही है फिर भी सभी टेस्ट पास करने के बाद अंतिम क्षण में निष्क्रिय हो जाता है। इलेक्ट्रोस्टेटिक डिसचार्स एक प्राकृतिक रचना है। यह अति ठंडे एवं नमी रहित वातावरण में सक्रिय रहता है। हमारे देश की पश्चिमोत्तर सीमा यथा लेह, कारगिल, सियाचीन आदि क्षेत्र में लगाए गए उपकरण ई एस डी के शिकार होते हैं। सिन्थेटिक कपड़े, सिन्थेटिक कारपेट के आम व्यवहार से "आ बैल मुझे मार" की स्थिति हो गयी है। ई एस डी बगैर प्राकृतिक परिस्थितियों के हमारे आस–पास उत्पन्न हो जाता है। अतः आवश्यकता हो गई है कि ई एस डी का गणितीय साइमुलेशन कर इसके दुष्प्रभाव के आँकड़े तैयार किए जाएँ और अपनी निर्माणाधीन नए सिस्टम में इससे बचाव के तरीकों को इस्तेमाल किया जाए। एक सिस्टम आपरेटर या सिस्टम डिजाइनर के शरीर के आस पास उत्पन्न ई एस डी सिर्फ कम्पोनेंट ही नही जलाती बल्कि सूचना तन्त्र को भी निष्क्रिय कर देती है।

लाइटनिंग एक प्राकृतिक समस्या है। इसमें उच्च शक्ति के विद्युत ऊर्जा का ट्रान्जिएन्ट, जिसकी क्षमता लगभग 10^6 आम्पियर (या एक मेगा आम्पियर) होती है तथा जो 50 माइक्रोसेकेन्ड तक जीवित रहता है, उत्पन्न होती है। एक मेगा आम्पियर का यह करेन्ट ताँबे की 3.5 से मी मोटी चादर को अपने ताप से गला सकती है। कल्पना कीजिए अगर हमारा सिस्टम उसके समीप आता है तो क्या होगा?

- **स्टार्म सेल** एक अति आधुनिक खोज है। सूरज की सतह से उत्सर्जित एक्स रे, डस्ट पार्टिकल्स, पराबैंगनी किरणें, एक्जोस्फेयर में व्याप्त हाइड्रोजन एटम एवं स्ट्रे आक्सीजन एटम से मिलकर आयनतल में आकस्मिक वृद्धि करता है। ऋणावेशित एवं धनावेशित दो भिन्न तल के प्रभाव से जो पल्स बर्स्ट होती है वह संचार उपकरणों की क्षमता को निष्क्रिय करने में सक्षम है यहाँ तक कि उसे नष्ट भी कर देती है। कई अन्वेषक दल इस ट्रान्जिएन्ट के मैग्नीच्यूड तथा वेव शेप एवं उसके दूरगामी प्रभाव का विश्लेषण कर रहे हैं। स्टार्म सेल एक अप्रत्याशित घटना

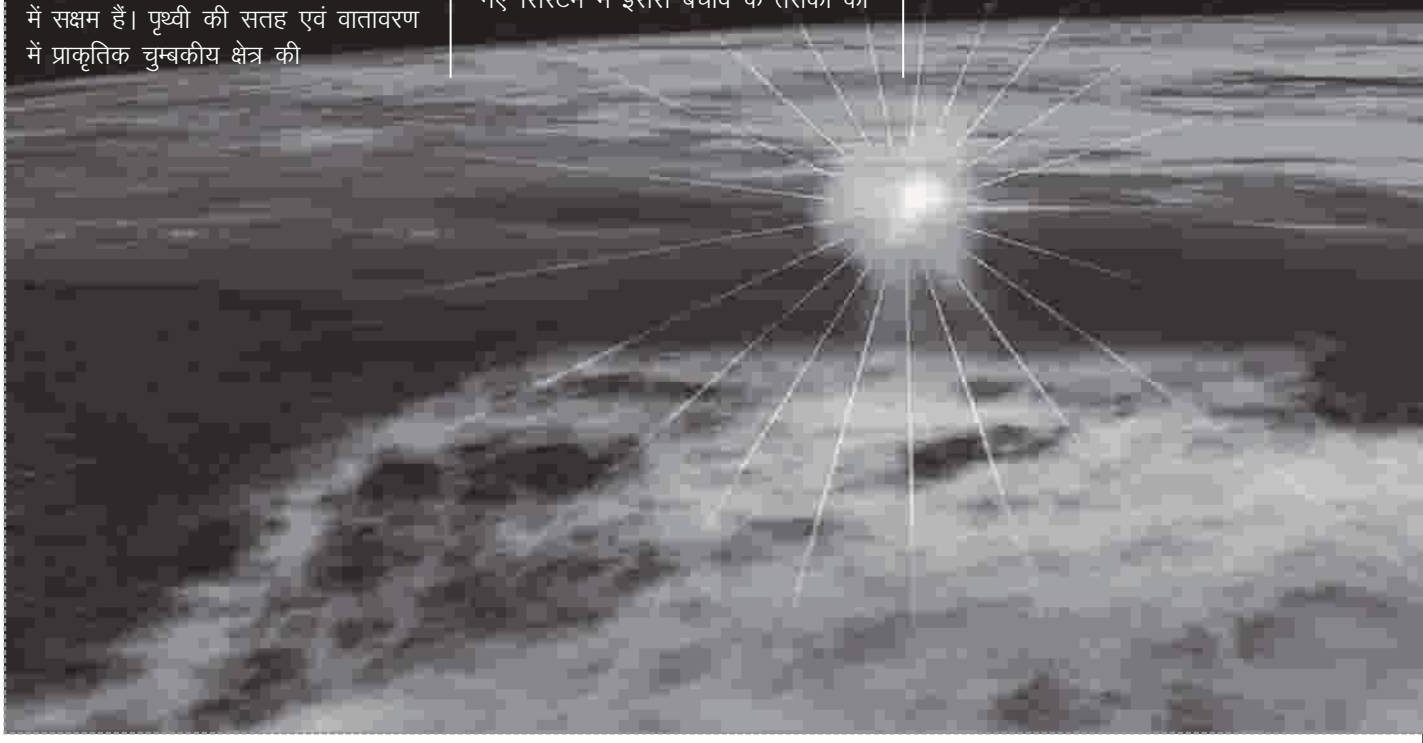

की तरह से है जिसकी क्षमता और पेरियोडीसीटी अनिश्चित है। गगनचुम्बी इमारतों में डाले गए बिजली, टेलिफोन, कम्प्यूटर नेट वर्किंग के तार विशेष रुप से स्टार्म सेल जनित ट्रांजिएंन्ट के शिकार होते है।

- प्राकृतिक एवं मानव जनित 30 मेगा हर्ज तक की विद्युत चुम्बकीय तरंग और उसके प्रभाव के निदान से सम्बन्धित ठोस आधार आज भी स्पष्ट नहीं हो रहे हैं। क्योंकि किसी सेल या जोन में 30 मेगा हर्ज तक के प्रभावशाली स्रोत कितने हैं और उनकी आपरेटिंग आवृत्ति तथा विकिरण की शक्ति कितनी है यह पता लगाना कठिन है। मिलीटरी स्पेसीफिकेशन में जो लिमिट बताई गई है उस पर स्थान विशेष के हिसाब से विचार जरुरी है।
- इसी प्रकार 9 से 150 किलो हर्ज तक इन्टरफियरिंग वोलटेज की सीमा रेखा खींचना भी असंभव है। इसकी लिमिट भी परिस्थिति जन्य है। विद्युतीय क्षेत्र 30 मेगाहर्ज तक तथा चुम्बकीय क्षेत्र 9 से 100 किलो हर्ज तक अत्यन्त प्रभावशाली होता है। चाहे किसी भी आवृत्ति पर (वी एल एफ से लेकर मी मी वेव तक) लोकल आसिलेटर बनाए जाएँ उनका मौलिक आधार इन्हीं दो अवृत्तियों से शुरु होता है। अतः इन्टरफेरेंस से बचाव के हर पहलू पर सोचने से पहले उपरोक्त आवृत्ति का अपने सिस्टम के प्रारुप के मुताबिक विश्लेषण आवश्यक है।
- मशीनीकृत जीवन का एक और अंग बनता जा रहा है "इलेक्ट्रानिक स्टोरेज आफ बुक्स"। हमारे पुस्तकालयों में हजारों की संख्या में अत्यन्त उपयोगी पुस्तकें हैं जिन्हें पढ़कर एवं समझकर हम तकनीकी विकास करते हैं। अब इलेक्ट्रानिक स्टोरेज ने उसे देखने की सुविधा दी है। किताब को स्पर्श किये बिना मिनटों में हजारों किताबें स्कैन की जा सकती हैं तथा उपयोगी लेखों की हार्ड प्रतियाँ निकाली जा सकती हैं। सोचिए अगर इलेक्ट्रानिक स्टोरेज की डाटा बैंक करप्ट हो जाए तो क्या होगा?

निष्कर्ष :–

विद्युत चुम्बकीय प्रदूषण को 1960 के दशक में अनुभव किया गया, 1970 के दशक में स्वीकार किया गया, 1980 के दशक में इसके दुष्प्रभाव की अन्तर्राष्ट्रीय चेतना देने हेतु आवश्यक कदम उठाए गए, कानून बना कर इसके बचाव के उपाय हेतु कदम उठाए गए। 1990 के दशक में यह सिस्टम डिजाइन का अंग बन गया। अब इक्कीसवीं सदी में विकसित और विकासशील दोनों प्रकार के राष्ट्रों ने अपनी आर्थिक उन्नति एवं क्रान्तिकारी औद्योगिक विकास में विद्युत चुम्बकीय इन्टरफेरेंस और कपैटिविलिटी को मूल मन्त्र माना है। अगर हम तकनीकी क्षेत्र में स्वावलम्बी बनना चाहते हैं तो इसकी सत्ता को हमें भी स्वीकार करना होगा।

वैज्ञानिक
रक्षा इलेक्ट्रॉनिकी प्रयोज्यता प्रयोगशाला (डी),
देहरादून

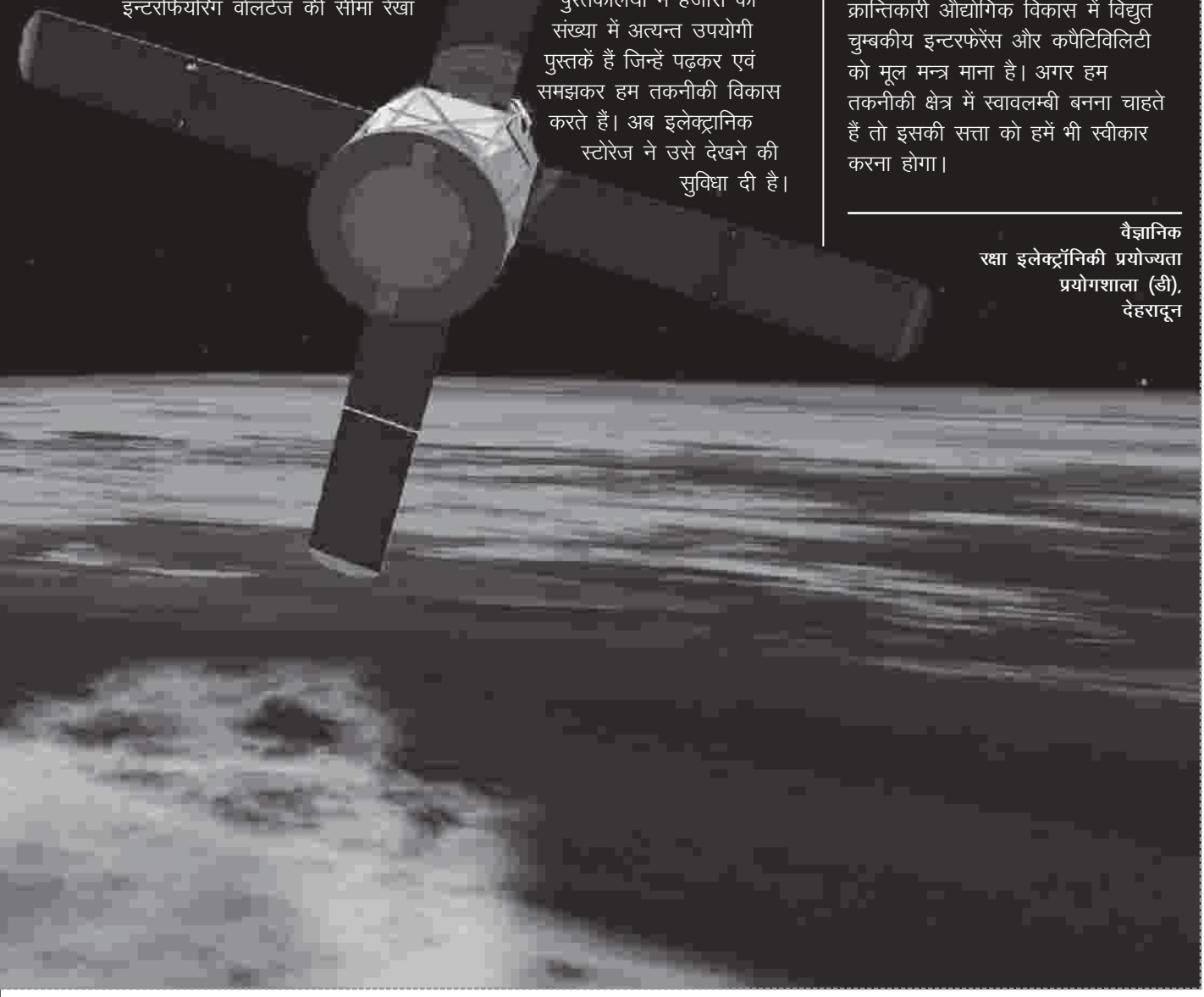

पृथ्वी की परिक्रमा करते 24 उपग्रहों के इस समूह, धरती पर स्थित पांच मोनिटरिंग/नियन्त्रण कक्ष व उपभोक्ता का रिसिविंग उपकरण मिल कर ग्लोबल पोजिसनिंग सिस्टम (जी॰पी॰एस॰) बनाते हैं।

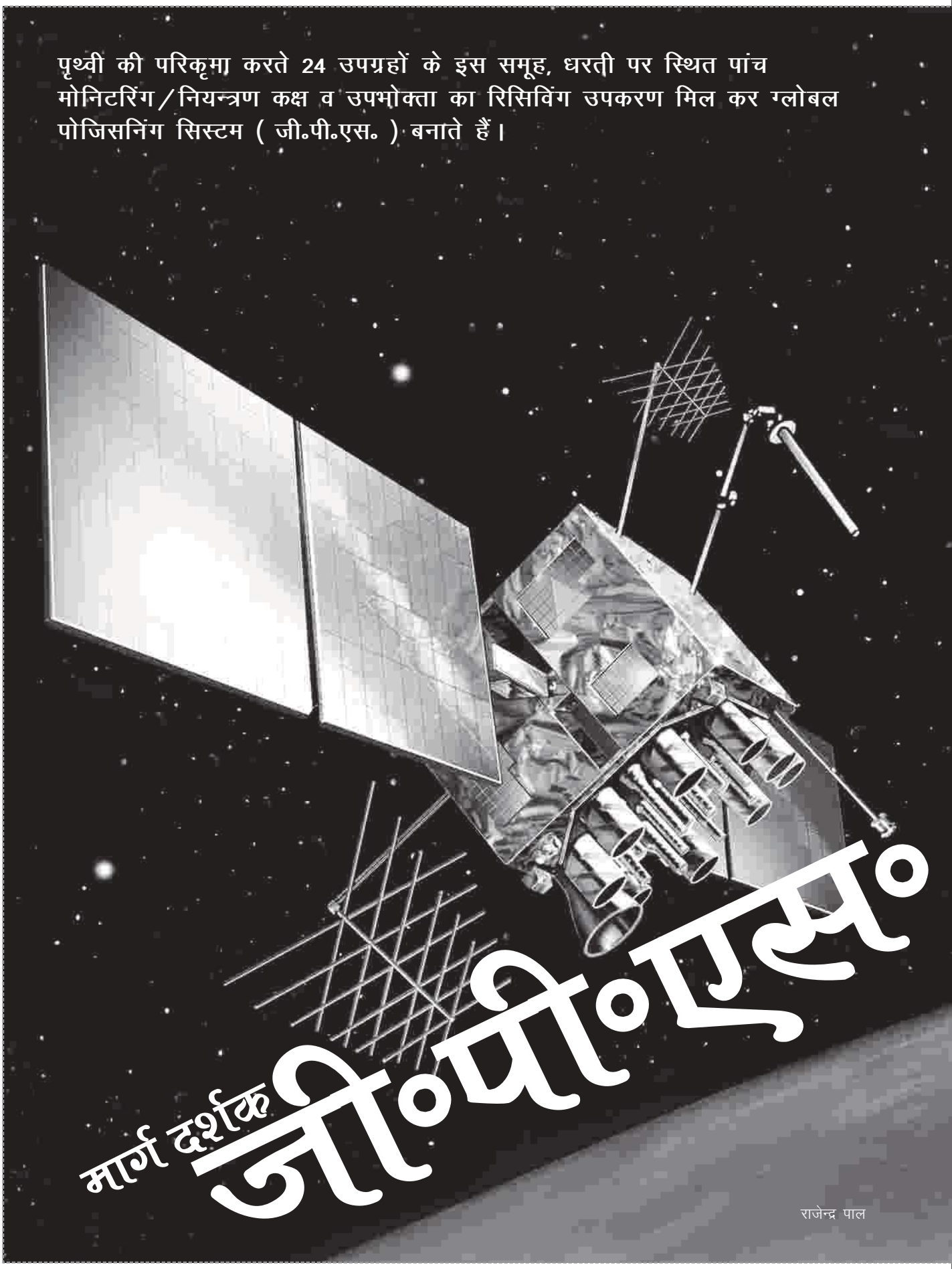

मार्ग दर्शक जी॰पी॰एस॰

राजेन्द्र पाल

विश्व में तकनीकी ज्ञान तीव्रता से बढ़ रहा है । गत दो दशक में मोबाइल सचांर सेवा का विस्तार जिस गति से हुआ उससे पूरी दुनिया हमारी मुट्ठी में समा गयी । सात समन्दर पार की दूरिया मिट गयी । एक और क्रान्तिकारी तकनीक का विकास भी लगभग इसी अवधी में पूरे विष्व में जनसाधारण की पसन्द बन गया । ग्लोबल पोजिसनिंग सिस्टम (जी॰पी॰एस॰) आज प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति व समृद्धि का साथी बन गया । इस तकनीकी लेख के माध्यम से संक्षेप में जी पी एस का विज्ञान, कार्य शैली एवं उपयोगिता पाठकों तक पहुंचाने का प्रयास किया जा रहा है

जी॰पी॰एस॰ की आवश्यकता

प्राचीन काल से मनुष्य अपने अस्तित्व की खोज में लगा हुआ है । आदिमानव जगंल में अपने रास्ते से भटक जाता था। उजाड़ रेगिस्तान में फंसा व्यक्ति हो अथवा समुद्र के बीच डगमगाती नौंका, दोनों को ही अपनी स्थिति का आभास नहीं होता क्योंकि अपने गंतव्य स्थान पर पहूंचने के लिए कोई मार्ग दर्शक चिन्ह उपलब्ध नहीं होता । समय के साथ–साथ मनुष्य ने बहुत कुछ सीखा । दिन में सूर्य व ऊंचे पहाडों के सहारे और रात्री में चांद सितारों की सहायता से मानव अपनी दिशा और रास्ते पहचान ने लगा । नये नये उपकरणों का आविष्कार हुआ जिन के प्रयोग से थल व जल में अपनी स्थिति जानना आसान हो गया । इसी खोज के क्रम में अमेरिका ने 1978 में पहला जी पी एस उपग्रह समूह आकाश में स्थापित किया और इस प्रकार मार्ग दर्शन (नेविगेशन) के क्षेत्र में नये युग का सूत्रपात हुआ । मनुष्य द्वारा निर्मित ये उपग्रह चांद सितरों का कार्य कर रहे है । आज अति आधुनिक जी पी एस के द्वारा सभी मौंसम में जल, थल और नभ में हम अपनी स्थिति कुछ सेन्टिमीटर की शुद्धता तक पता लगा सकते हैं।

एक और महत्वपूर्ण कारण बना जिसने जी पी एस की आवश्यकता बढ़ा दी । विध्वंसक परमाणु हथियारों की होड़ में अपना वर्चस्व स्थपित करने के लिए आवश्यक है कि समुद्र की गहराईयों में कार्यरत पनडुब्बी की स्थिति का सही आंकलन हो जिससे छोडी गयी मिसाइल दुश्मन के ठिकाने पर सटीक प्रहार कर सके । अमेरिका ने अपनी इन्टर कॉन्टीनेन्टल बेलिस्टिक मिसाइल की मारक क्षमता को जल, थल व नभ में अचूक व प्रभावशाली बनाने के लिये 120 करोड रू. के खर्च से मार्च 1994 में 24 उपग्रहों का एक समूह सचांलन के लिये रक्षा विभाग को सोंपा । मई 2000 में इसे आम जनता के लिये उपलब्ध करा दिया गया ।

क्या है जी॰पी॰एस॰ ?

पृथ्वी की परिक्रमा करते 24 उपग्रहों के इस समूह, धरती पर स्थित पांच मोनिटरिंग/नियन्त्रण कक्ष व उपभोक्ता का रिसिविंग उपकरण मिल कर ग्लोबल पोजिसनिंग सिस्टम (जी॰पी॰एस॰)बनाते हैं। 3000 से 4000 पौंडस के ये उपग्रह पृथ्वी से 19,300 कि॰मी॰ के वृताकार कक्ष में सौर ऊर्जा की सहायता से 12 घंटे में पृथ्वी का एक चक्कर लगाते हैं। 60° के अन्तराल से 6 उपग्रह कक्ष बनते हैं और प्रत्येक कक्ष में 4 उपग्रह होने से 24 उपग्रह हो जाते हैं जो हमेशा कार्यरत रहते हैं । उपग्रह कक्ष भूमध्य रेखिय पटल से 55° झुकाव पर होता है। उपग्रह 14,000 कि॰मी॰ प्रति घन्टा की गति से चक्कर लगाते हैं।

जी॰पी॰एस॰ उपग्रह 1575.42 मैगा हर्ज (यू एच एफ बैन्ड) पर रेडियो तरंग प्रेषित करते हैं । 50 वाटस तक की ये रेडियो तरंगें बादल, ग्लास, प्लास्टिक व धूल कणें से प्रभवित नहीं होती किन्तु सीधी रेखा में चलने के कारण ठोस पदार्थ जैसे ऊंचे पहाड़, ऊंची इमारतें इनका रास्ता अवरूद्ध कर सकती हैं। जी पी एस के द्वारा पृथ्वी के किसी भी भाग में (जल, थल, व नभ में) उपभोक्ता को 5–6 उपग्रह से सिग्नल हमेशा प्राप्त होता है ।

जी॰पी॰एस॰ के प्रमुख अंग

जी॰पी॰एस॰ की जटिल कार्य प्रणाली को समझने के लिये पूरे सिस्टम को तीन खंण्ड़ो में बांट सकते हैं :–

1) आकाशीय खण्ड़ (स्पेस सेग्मेन्ट)

2) नियन्त्रक खण्ड़ (कन्ट्रोलिंग एवं मोनिट्रिंग सेग्मेन्ट)

3) उपभोक्ता खण्ड़ (यूजर सेग्मेन्ट)

जैसा कि ऊपर बताया बया है कि स्पेस सेग्मेंट में 24 उपग्रह होते हैं जो सभी पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए सिग्नल भी प्रेशित करते हैं । कोई उपग्रह अगर खराब भी हो जाये तो कुछ अतिरिक्त उपग्रह भी बदलने के लिए उपलब्ध होते हैं । इस प्रकार की व्यवस्था जी पी एस की कार्य पद्धति को अधिक विश्वसनीय व टिकाऊ बनाती है ।

नियन्त्रक खण्ड़ में मुख्य नियन्त्रण स्टेयान के अलावा चार भूस्थित एन्टैना व छः पूर्णतय समर्पित मोनिट्रिंग स्टेशन हैं जो विश्व के विभिन्न स्थानो से उपग्रह समूह की सभी कार्य प्रणालियों की बारिकी से निगरानी करते रहते हैं ।

उपभोक्ता खण्ड़ में मोबाइल फोन की तरह जी पी एस रिसीवर होता है जो अत्याधुनिक सोटवेयर के साथ काम करता है । सम्पूर्ण कार्य प्रणाली को सुचारू चलाने के लिये एक स्थिर व एक्यूरेट घड़ी होती है जो उपग्रह की परमाणु घड़ी से सिंक्रोनाईज्ड रहती है । यह आवश्यक है क्योंकि रिसीवर की घडी में एक माइक्रोसैकेन्ड़ (सैकिन्ड़ का एक लाखवां भाग) की त्रुटि पृथ्वी पर उस की स्थिति में 300 मीटर की त्रुटि पैदा कर देती है ।

जी॰पी॰एस॰ उपग्रह

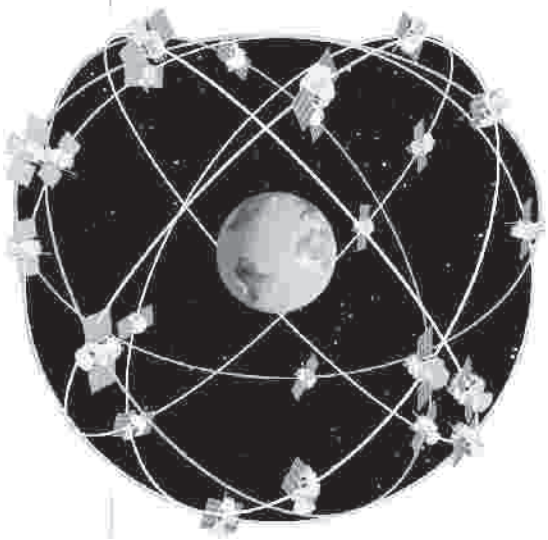

जी पी एस रिसीवर

जी॰पी॰एस॰ कार्य पद्धति

जी पी एस रिसीवर कहीं भी हो वो उपग्रह से प्रेशित सिग्नल निरन्तर प्राप्त करता रहता है और उपग्रह के विषय में आवश्यक सूचना अकिंत कर लेता है । उपग्रह द्वारा भेजे सन्देश में भेजने का समय भी सम्मलित होता है । लगभग 20,000 कि॰मी॰ की दूरी चल कर ये प्रकाशीय गति से चलने वाली तरंगे जब रिसीवर पर आती हैं तो कुछ समय व्यतीत हो जाता है । प्रेशित समय और रिसीवर पर अकिंत समय के अन्तर को रेड़ियो सिग्नल की गति $3X10^8$ मीटर प्रति सैकिन्ड़ से गुणा करने पर उपग्रह से रिसीवर की दूरी की सही गणना हो जाती है ।

इस प्रकार तीन उपग्रहों से प्राप्त रेड़ियो सिग्नल से हम पृथ्वी पर अपनी स्थिति तीन आयाम – अक्षांतर, देशान्तर व ऊंचाई में ठीक से पता लगा सकते हैं । 'ट्राईलिट्रेशन' नाम की ज्योमेट्रिकल तकनीक की सहायता से हम अपनी स्थिति, गति व ऊंचाई की गणना कर लेते हैं । केवल एक उपग्रह से प्राप्त ड़ाटा हमारी स्थिति को एक गोले , जिसका केन्द्र यह उपग्रह है , की सतह पर दर्शाता है । दूसरे उपग्रह से प्राप्त ड़ाटा से बने गोले की पहले गोले पर पडी आंशिक छाया से हमारी स्थिति एक छोटे क्षेत्र में सीमित हो जाती है और तीसरे उपग्रह से स्थिति अपेक्षाकृत और अधिक स्पष्ट व शुद्ध हो जाती है । चौथे उपग्रह की सहायता से समुद्र में तैरते जहाज अथवा आकाश में उड़ते वायुयान की ऊंचाई का भी सही आंकलन हो जाता है ।

डिफ्रेशियल जी॰पी॰एस॰ (डी॰जी॰पी॰एस॰)

जी॰पी॰एस॰ उपग्रह 20,000 कि॰मी॰ की दूरी पर आकाश में भ्रमण करते हैं। सूर्य व चन्द्रमा की गुरूत्वाकर्षण शक्ति से उपग्रह भी प्रभावित होते हैं अतः उनके घूमने की कक्षा में मामूली बदलाव आ सकता है जिससे उपग्रह की दूरी नापने में त्रुटि आ जाती है । दूसरे – पृथ्वी के चारों तरफ बनी आइनोस्फेयर की परतें रेडियो सिग्नल की दिशा में थोड़ा परिवर्तन कर देती हैं जो सही दूरी नापने में बाधक है । तीसरे – रेड़ियो सिग्नल की गति केवल षून्य दबाव पर ही 3×10^8 मीटर प्रति सैकिन्ड़ होती है किन्तु पृथ्वी और उपग्रह के बीच हजारों किलोमीटर की दूरी में हवा का दबाव बदलनें से रेड़ियो वेव की गति भी प्रभावित होती है और दूरी की गणना में त्रुटि आ जाती है

इन सभी त्रुटियों को दूर करने के लिए डी॰जी॰पी॰एस॰ की खोज की गयी । इसका सिद्धांत सरल है ; अगर पास के एक निश्चित स्थान पर एक रिसीवर स्थापित कर दिया जाय तो गणना के लिए यह संदर्भ बन जाता है । आकाश से गुजरती रेड़ियो तरंगे वायुमंड़ल में उपस्थित विभिन्न विकृतियों के कारण समान रूप से प्रभावित होती हैं अतः एक जैसी त्रुटियों का शिकार होती है। इस स्थायी रिसीवर की सहायता से घुमक्कड़ उपभोक्ता के रिसीवर में उपरोक्त कारणों से आई त्रुटियां समाप्त हो जाती हैं जिससे एक मीटर से भी कम की सही स्थिति ज्ञात हो जाती है।

जी॰पी॰एस॰ की उपयोगिता

जी॰पी॰एस॰ प्रणाली आज तेजी से लोकप्रिय हो रही है । रक्षा व निजी संस्थानों में इसका प्रयोग निरन्तर बढ़ रहा है । संक्षेप में कुछ प्रमुख उपयोग नीचे दिये गये हैं :–

'नासा' जैसे प्रतिष्ठित अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान जी॰पी॰एस॰ के द्वारा अन्तरिक्ष में छोड़े विभिन्न राकेट, स्पेस शटल व अन्य अन्तरिक्ष उपकरणों का संचालन करते हैं । बहुत दूर स्थित ग्रहों की यात्रा के समय अपने यान को ट्रैक करना केवल जी॰पी॰एस॰ से ही सम्भव है।

भारतीय उपग्रह प्रेक्षेपण में जो उल्लेखनीय प्रगति हुई है वो जी॰पी॰एस॰ तकनीक का ही कमाल है । विभिन्न प्रकार की मिसाइलस को लक्ष्य पर सटीक निशाना बनाने में जी॰पी॰एस॰ की मुख्य भूमिका होती है ।

जी॰पी॰एस॰ के उत्तरोत्तर प्रयोग से सर्वेक्षण विभाग की कार्य प्रणाली में आमूल चूल परिवर्तन आया है। दुनिया में भूखण्ड के मानचित्र अब यथार्त के अति निकट व त्रुटिहीन हो गये हैं ।

जी॰पी॰एस॰ उपग्रह की परमाणु घड़ी की शुद्धत्ता (एक्यूरेस्सी) ने दुनिया का समय अपने अनुसार चला दिया। अब आप अपनी घड़ी जी॰पी॰एस॰ की घड़ी से मिला सकते हैं ।

आपातकालीन स्थिति

भूकंप , भूस्खलन , सुनामी व बड़वानल (जंगल की भयानक आग) जैसी आपदा में जी॰पी॰एस॰ द्वारा राहत कार्य में बहुत सहायता मिलती है ।

जी॰पी॰एस॰ द्वारा खोये हुए बच्चे व भटके हुए वरिष्ठ नागरिक / पालतू पशु आदि आसानी से ट्रैक किये (ढूंढे जा सकते हैं ।

उपसंहार

मोबाइल फोन में जी॰पी॰एस॰ 'चिप' के प्रत्यारोपण से 'नैविगेशन व ट्रैकिंग' प्रणाली भी हमारी मुट्ठी में आ गयी । आस पास की मोबाइल टावर्स की सहायता से अब माबाइल फोन को ट्रैक करना आसान हो गया । स्थानीय मानचित्र पर अपना मार्ग निर्धारित कीजिये और रास्ते की भूल भुलईया के चक्कर से बचिये ।

भविष्य में 80 प्रतियात से अधिक स्मार्ट फोन में जी॰पी॰एस॰ 'चिप' लगा होगा और यह एक घरेलू उपकरण बन जायेगा । इस लेख के द्वारा अगर पाठक के मन में एक जिज्ञासा, एक चाहत पैदा हो जाय और वो जी॰पी॰एस॰ के विषय में अधिक जानने को उत्सुक हो तो लेखक अपने प्रयास को सफल समझेगा।

डी आर डी ओ, वैज्ञानिक
फैलो सदस्य IETE ; **सदस्य** IDST
प्रबन्धक सदस्य ISWA(UK)

अर्चना बहुगुणा

ग्लोबल वार्मिंग का सरीसृपों के लिंग पर प्रभाव

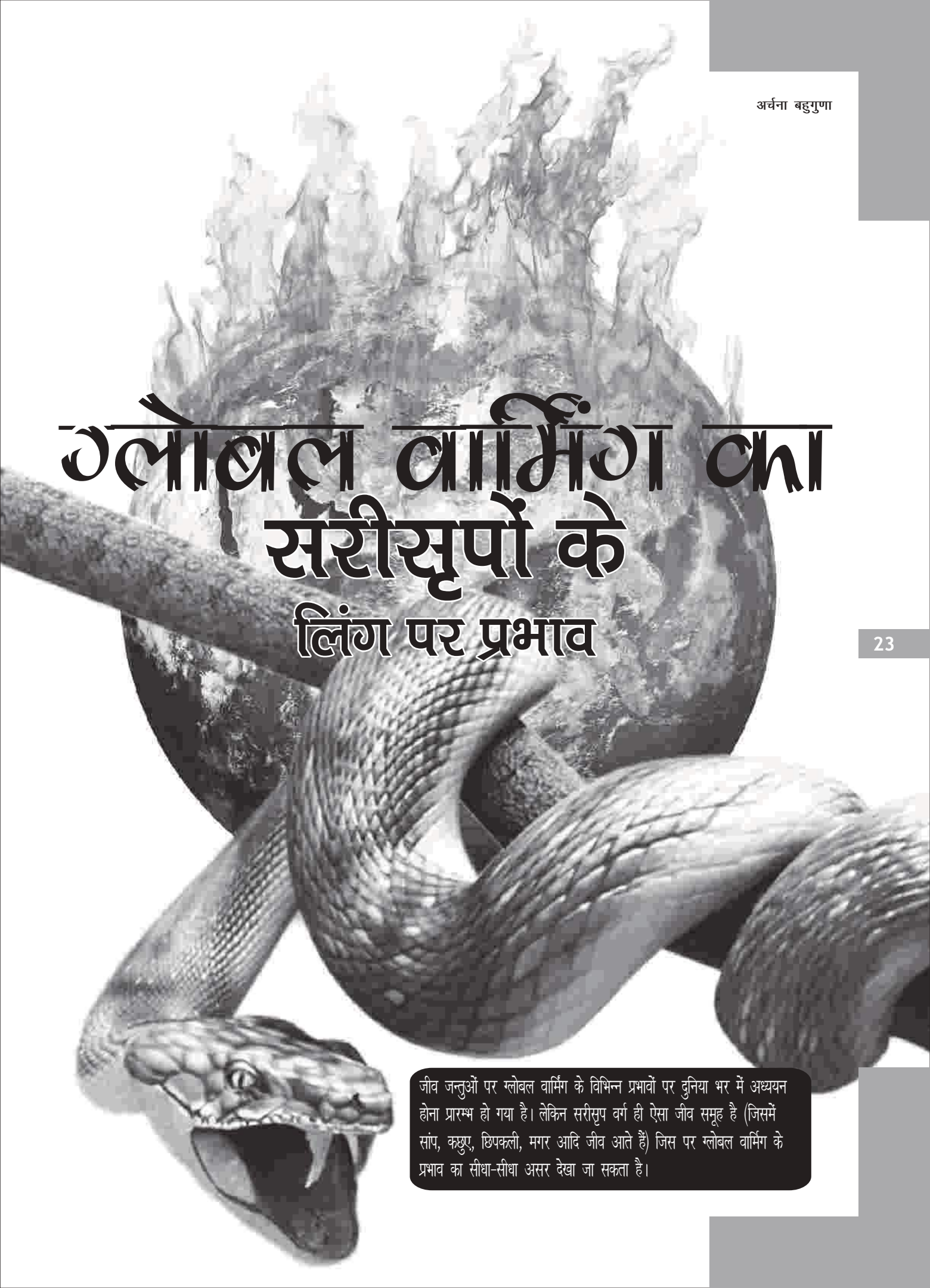

जीव जन्तुओं पर ग्लोबल वार्मिंग के विभिन्न प्रभावों पर दुनिया भर में अध्ययन होना प्रारम्भ हो गया है। लेकिन सरीसृप वर्ग ही ऐसा जीव समूह है (जिसमें सांप, कछुए, छिपकली, मगर आदि जीव आते हैं) जिस पर ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव का सीधा-सीधा असर देखा जा सकता है।

सरीसृप समूह दुनिया भर में फैला हुआ है। केवल अंटार्कटिका को छोड़कर ये जीव धरती पर हर स्थान पर मौजूद हैं। इन जीवों पर अध्ययन करना मुश्किल काम है क्योंकि सांपों के जहरीले फन के कारण सभी इनसे दूर रहना बेहतर समझते हैं। वहीं छिपकलियों की सभी प्रजातियाँ जहरीली तो नहीं होतीं पर इण्डोनेशिया में पायी जाने वाली कोमोडो ड्रेगन एकमात्र जहरीली छिपकली है। कछुए और घड़ियाल इस धरती पर प्रकट होने वाले सबसे पुराने सरीसृप हैं जिनकी उत्पति 22 करोड़ साल पहले हुई। सरीसृप वर्ग ऐसा वर्ग है जिसने धरती पर होने वाले जलवायु परिवर्तन को सबसे अधिक झेला है और उसके प्रभाव से इस वर्ग की कई प्रजातियाँ विलुप्त हो गयीं।

ठंढे रक्त वाले इन प्राणियों के शरीर का तापमान बाह्य तापमान के अनुसार बदलता रहता है। यही कारण है कि ये किन्हीं किन्हीं स्थानों पर अधिक मात्रा में पाये जाते हैं और कहीं ढूंढे नहीं मिलते।

इस बढ़ते तापमान का सरीसृपों के प्रजनन पर सीधा प्रभाव देखा जा सकता हैं। ये ऐसे रीढ़धारी जीव है जिनमें कछुओं और मगरमच्छों में अण्ड़ों के निषेचन के बाद मादा या नर में विकसित होना आसपास के तापमान पर निर्भर करता है। अन्य रीढ़धारी जीवों में लिंग का विकास उसके भ्रूण के सेक्स गुणसूत्रों की बनावट पर निर्भर करता है। जैसे स्तनधारी जीवों के लिए गुणसूत्रों के कारण मादा का विकास होगा और यदि से नर का। पक्षियों में इसके विपरीत wz गुणसूत्रों से मादा का और zz से नर बनता है। सरीसृपों में गुणसूत्रों के अलावा तापमान भी लिंग निर्धारित करने का एक महत्त्वपूर्ण कारक होता है।

उन सरीसृप प्रजातियों में भी जो दुनियाँ के बहुत ठण्ड़े इलाकों में रहती हैं जैसे लेसरटा विविपेरा एवं वाइपेरा वरसस जो यूरोप में ओर उत्तरी ध्रुव में पायी जाने वाली छिपकलियाँ हैं 16 से 18° सें० तापमान पर भी पाचन क्रिया कम हो जाती है एवं 21–22 सें० से नीचे के तापमान पर इनमें भ्रुक्राणु बनने की प्रक्रिया कम हो जाती है।

वैज्ञानिकों के अनुसार हर जीव के लिए एक निश्चित तापमान हैं जिसके कम या ज्यादा होने पर उस जीव की सामान्य भारीरिक प्रक्रियाएँ प्रभावित होती हैं। 10 से 35° सें० का तापमान ऐसा होता है जो सामान्य रूप से हर जीव को झेलना पड़ता है वातावरण में 10° सें० तापमान बढ़ने पर ऑक्सीजन की खपत शरीर में 2.4 गुना और दिल की धड़कन 2.2 गुना बढ़ जाती है।

एक अध्ययन में देखा गया कि रेटल साँप की रेटलिंग करने की दर तापमान में 10° सें० के उछाल में बढ़ जाती है। शुक्राणु बनाने की प्रक्रिया सरीसृपों में 22° सें० तापमान से 32° सें० बढ़ने पर 6.7 गुणी हो जाती हैं।

सरीसृपों के लिए एक उच्चतम व एक न्यूनतम तापमान होता है जिसके उपर या नीचे आने पर उसकी हर प्रक्रिया बुरी तरह प्रभावित होती है। इन उच्चतम व न्यूनतम तापमानों के बीच एक निश्चित तापमान है जो सरीसृपों की प्रजातियों के लिए विशेष तापमान है।

वे सरीसृप जो भूमिगत होते हैं उन्हें थिग्मोथर्म्स कहा जाता है। वे मिट्टी के तापमान का उपयोग शरीर को गर्म रखने में करते हैं। मृदा की उपरी सतह दिन में काफी गर्म होती है। अतः वे अधिकतर समय वहीं पर बिताते हैं। वनों में दिन व रात के तापमान मे बदलाव बहुत कम होता है इसलिए सरीसृपों का तापमान भी उसी तरह 20 से 25 सें० के बीच बना रहता है। यह धरती के उन स्थानों से अलग हैं जहाँ दिन व रात के तापमान में बहुत अधिक अंतर है जैसे ठण्ड़े व गर्म रेगिस्तान के इलाके। इन इलाकों में रेत में घुसे रहने वाले सरीसृप अपने तापमान को सामान्य प्रक्रिया के लिए उचित बनाए रखते हैं।

धरती पर विचरने वाले तथा पेड़ पर रहने वाले सरीसृप वातावरण के तापमान से बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। बहुत अधिक धूप से बचने के लिए वे पत्थरों की ओट, पेड़ों व कंटीली झाड़ियों का उपयोग करते हैं। वाइपेरा एमोडायटस नामक साँप जो यूरोपियन वाइपर है इस पर तापमान के प्रभाव के किये गये प्रयोगों के अनुसार वातावरण के विभिन्न तापमानों का विभिन्न

प्रभाव पड़ता है। पाचन से पहले शरीर का तापमान हर साँप में 31.0 ± 0.28° एवं 34.5 ± 0.06° के बीच रहता है। यह तापमान पाचन क्रिया के दौरान बना रहता हैं और इसके बाद यह 30.9 ± 0.37° सें० पर आ जाता हैं। धूप सेंकना, पत्थरों व झाड़ियों में छिपकर बैठना, मिट्टी के उपर व नीचे शरीर को गर्माना, यहाँ तक कि सड़क की गर्मी से भारीर को गर्माना यह ऐसी प्रक्रियाएँ है जो हर सरीसृप जीव सामान्य रूप से अपनाता है।

तापमान पर निर्भर लिंग का विकास कछुओं तथा मगरमच्छों में देखा गया है। यद्यपि प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों में यह अध्ययन अधिक उपयोगी नहीं देखा गया। फिर इसे प्रयोगशाला के बाहर कुदरती वातावरण में किया गया। बुल व वोगत नामक वैज्ञानिकों ने 1979 में कछुओं के लिंग परिवर्तन को तीन प्रजातियों ग्रेपटेमिस अआकिटेनसिस, ग्रेपटेमिस स्युडोजिओग्राफिक व ग्रेपटेमिस जिओग्राफिका में अध्ययन किया। इस अध्ययन में उन्होंने 6 से 20 अण्ड़ों को धूप में और इतने ही अण्ड़ों को छाया वाले कम तापमान में रखा। कई प्रयोगों के बाद देखा गया कि गर्म तापमान यानी 30 सें० तापमान पर रखे अण्ड़े मादा कछुए बनते हैं और 22 सें० 28 सें० तक के तापमान पर रखे अण्डें नर कछुओं में विकसित होते हैं। यह भी देखा गया कि एक दिन में चार घण्टे के लिए 30 सें० पर रखे गए अण्ड़े मादा बनते हैं और उससे कम समय के लिए रखने पर वह नर बनते हैं। इसलिए तापमान के साथ–साथ, कितने समय तक वह इस तापमान पर रहते हैं दोनों ही कारक नर या मादा कछुओं को बनाने में मद्द करते हैं। उसी प्रकार कछुओं के घोंसलों में जो अण्ड़े उपर होते है वे गर्म तापमान झेलते हैं (30 सें० से अधिक) और मादा कछुओं में विकसित होते हैं और जो नीचे होते हैं वह नर कछुओं में विकसित होते हैं।

इस तरह लिंग का विकास जो तापमान पर निर्भर हो टी एम डी यानी टेम्प्रेचर डिपेन्डेटश्सेक्स डिटर्मिनेशन कहलाता है। यानी इस प्रक्रिया में कुछओं की कोशिकाओं में स्थित सेक्स गुणसूत्रों का लिंग विकास में कोई योगदान नहीं हैं बल्कि उनमें स्थित जीन तापमान के अनुसार मादा या नर विकसित करती हैं। डॉ0 ऐलिसन लेस्टली जो एक फिजियोलोजिकल इकोलोज़िस्ट हैं उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका के स्टेलेनहास्क विश्वविद्यालय में चार साल के मगरमच्छों के अध्ययन में देखा कि 31.7° सें० से कम तापमान पर इनके अण्डे मादा में विकसित होते हैं और उससे अधिक के तापमान 34.5° सें० तक ये नर में विकसित होते हैं। और 34.5° सें० अधिक के तापमान पर ये मादा में विकसित हो जाते हैं। इसलिए नील नदी के मगरमच्छों में 3° सें० के तापमान के परिवर्तन में मादा से नर बनने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है।

एक और अध्ययन में जो इण्डियाना विश्वविद्यालय के प्रो० आर० एम० बोडेन ने किया उसमें देखा गया है कि पेंटिड कछुए यानी क्रिसेमिस पिक्टा में यदि अण्डों को 28° सें० के तापमान पर रखा जाए तो उनके अण्डों के योक में मादा हार्मोन इस्टाडाओल इ2 बढ़ जाता हैं व टेस्टीरोन यानी नर हार्मोन की मात्रा कम हो जाती है। यानी तापमान का असर उन जीन या वंशाणुओं को क्रियाशील करता हैं जो लिंग विकसित करने की प्रक्रिया आरम्भ करते हैं।

तापमान पर निर्भर लिंग विकास वातावरण पर निर्भर लिंग विकास के अन्तर्गत आता है। इसी के अंतर्गत किसी भी प्राणी की संख्या के आधार पर भी लिंग विकसित होना देखा गया है जिसे पॉलीफेनिम्स कहते है। सरीसृपों के लिंग निर्धारण के अध्ययन में देखा गया है कि भूण विकास की प्रक्रिया के मध्य का एक तिहाई विकास के समय वातावरण का तापमान, लिंग बदलने की प्रक्रिया में सहायक होता है। उस विकास के भाग में वातावरण का क्या तापमान है वह लिंग निर्धारित करता हैं।

समुद्री कछुए की प्रजाति केरीटा–केरीटा यानी लोगरहेड कछुए के 23 घोंसलों का अध्ययन पूर्वी मेडिटरेनियन के अलगाद इलाके में किया गया। घोसले का औसतन तापमान साल में 29.5° सें० से 33.2° सें० देखा गया। दैनिक तापमान में 0.3° सें० से 1.4° सें० का अन्तर देखा गया। इस अध्ययन में देखा गया कि इनके अण्डों का विकास वातावरण के तापमान पर निर्भर करता है। यदि यह तापमान सामान्य से अधिक हो तो यह अण्ड़े विकसित नहीं हो पाते। इस अध्ययन से यह भी स्पश्ट है कि इन प्रजातियों में वातावरण के सामान्य से अधिक तापमान होने पर इनके अण्डों में जीवन पनप नहीं पाया और ये अण्ड़े गर्मी से सड़ जाते हैं।

सन् 1993 से 1998 के बीच पेंटिड कछुओं क्रिसेमिस पिक्टा के 390 घोसलों का अध्ययन किया गया। पेंटिड कछुआ उत्तरी अमेरिका में आमतौर से पाये जाने वाली प्रजाति है। हर साल यह मिसिसीपी नदी के थॉमसन काजवे क्षेत्र में अण्डे देने आते हैं। गर्मियों में विकसित होते हैं और बसंत आते ही अपने घरौंदों से बाहर आ जाते हैं। भ्रूण के दो तिहाई विकास के बाद वातावरण का तापमान यह निर्धारित करता है कि वह नर में विकसित होगा या मादा में। अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय के पारिस्थितिकी विज्ञान एवं विकासवाद के वैज्ञानिक डॉ0 एफ0 जे0 जेनसन के अनुसार औसत वातावरण के तापमान बढ़ने का प्रभाव इन प्रजातियों में मादा नर अनुपात को प्रभावित करता है। 10 सें० के औसत तापमान का अन्तर भ्रूण के 2/3 विकास के समय भ्रूणों के लिंग में परिवर्तन करता है।

ये कछुए जून माह में बालू के घरौंदों में अण्ड़े देते हैं। गर्मियों में इनके बच्चे परिपक्व हो अण्डे से बाहर निकल जाते हैं। ये बसंत तक इन घरौंदों में रहते हैं। और सितम्बर माह में बाहर निकलना शुरू हो जाते हैं।

इस अध्ययन में उन्होंने 932 शावकों का लिंग परीक्षण किया जिसमें से 529 नर, 397 मादा और 6 द्विलिंगी थे। हर साल अधिकतर शावक एक ही लिंग के थे। 1988, 1989 व 1991 में केवल मादा शावक ही पैदा हुए जबकि 1990 व 1992 में नर शावकों की संख्या अधिक थी। वे 1993 के आंकड़े बाढ़ की वजह से इक्टठे नहीं कर पाए। यह देखा गया कि जुलाई का औसत वातावरण तापमान इन शावकों के लिंगों को प्रभावित करता है। मिट्टी का जुलाई का तापमान भी इन शावकों के लिगों को प्रभावित करता है।

1962 और 1992 में केवल नर शावक जन्में जबकि 1955 और 1983 में केवल

मादा शावकों ने जन्म लिया। यह देखा गया कि जुलाई के वातावरण का औसत तापमान जिस वर्ष 4° सें० बढ़ा उस वर्श नर शावक पैदा ही नहीं हो पाए।

यह एक मात्र ऐसा अध्ययन हैं जिसमें वातावरण के बढ़ते तापमान का सीधा असर कछुए की प्रजाति पर देखा जा सकता है। क्या यह प्रभाव दुनिया भर की कछुओं की प्रजातियों पर भी पड़ रहा हैं और क्या भविष्य में इस कारण हम बहुत–सी प्रजातियॉ खो देगें यह अध्ययन का विषय हैं।

एक अन्य अध्ययन में अमेरिका के एलीगेटर मिसिसिपेनसिस नामक सरीसृप में देखा गया कि यदि अण्ड़े समूह में पनपाएं जाए तो उनमें 73 प्रतिशत नर पैदा होते हैं और यदि उन्हें फैला कर खुले वातावरण में रखा जाए तो केवल 15 प्रतिशत नर पनपते है। यानी समूह में पनपने पर उनके आसपास का तापमान उपापचय उर्जा से बढ़ जाता है और उनमें नरों की संख्या बढ़ जाती है।

कछुओं के 14 वर्ग और 5 परिवार समूह में देखा गया कि यदि अण्डों के विकास के समय वातावरण का तापमान 25° सें० हो तो सभी अण्ड़े नर में विकसित होते हैं और 31° सें० से उपर तापमान पर वे सभी मादा में विकसित होते हैं यानी जलवायु परिवर्तन का इन प्राणियों में सीधा–सीधा प्रभाव होगा। परंतु यह भी संभव है कि मादा अण्ड़े देते समय ऐसे स्थानों का चयन करे जो वृक्षों के आस–पास छायादार या सामान्य तापमान वाले हों जिससे नर मादा की संख्या का संतुलन बना रहे। इस ओर और अधिक अध्ययन की आवश्यकता है। इस प्रकार के सरीसृपों पर अध्ययन कुछ ही स्थानों पर किए जा रहे हैं यदि इन्हें व्यापक रूप से किया जाए तो हम भविष्य में इन प्राणियों की विलुप्तता के विषय में अधिक तेजी से किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते है जिससे समय रहते तेजी से उपाय किए जा सकें।

सरीसृप अधिकतर अण्ड़े ही देते हैं। लेकिन जो सरीसृप पानी में ही अपने जीवन का अधिकतर समय व्यतीत करते हैं जैसे समुद्री साँप उनके अण्ड़े नहीं बल्कि सीधे विकसित बच्चे पैदा होते हैं। समुद्री साँपों में ही गुणसूत्रों पर आधारित नर या मादा का जन्म होता है।

मीसोजोइक युग के सरीसृपों के अध्ययन में हार्वर्ड के वैज्ञानिक प्रो० मार्क पे जल ने पाया कि इन सरीसृपों में गुणसूत्र विकसित हुए जिससे नर या मादा का जन्म इन्हीं गुणसूत्रों पर आधारित रहा और यह विकास धीरे–धीरे हुआ और तब तक पूर्ण हो गया जब इन्होंने समुद्र को अपने रहने का निवास बनाया। उनके अनुसार गुणसूत्रों पर आधारित लिंग का विकास प्राणियों के लिए अधिक लाभकारी है क्योंकि इस आधार पर पर्यावरण के तापमान का नर मादा अनुपात पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन वे जीव जैसे सरीसृप की अधिकतर प्रजातियाँ एवं मछलियाँ आदि पर्यावरण के तापमान पर लिंग के विकास के लिए पूर्णयता निर्भर है और इन प्रजातियों पर वातावरण के बढ़ते घटते तापमान का लिंग विकसित होने से सीधा–सीधा प्रभाव पड़ता है। इसका नतीजा भविष्य में जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ दुनिया के हर कोने से देखने को मिलेगा। हो सकता है बड़े पैमाने पर न सही लेकिन क्षेत्रीय स्तर पर हम इन प्राणी वर्ग की कई महत्वपूर्ण प्रजातियाँ खो दें।

जब सरीसर्प घोसलों में अण्ड़े देते हैं तो उनके घोसलों के आस–पास की हवा में अण्ड़ों के कवच से कार्बन डाइ ऑक्साइड बाहर आती रहती है इसमें उसके आसपास का तापमान धीरे–धीरे बढ़ता रहता है। अण्डों की गर्मी भी इन गैसों के साथ बाहर आती रहती है। यदि अण्ड़ें छायादार स्थान पर न देकर धूप में हों तो यह तापमान तेजी से बढ़ता है। साथ ही जो अण्डे घरौंदों में उपर की ओर है उन्हें अधिक तापमान झेलना पड़ता है। बारिश यदि उस स्थान पर सामान्य है तब भी वातावरण के तापमान पर बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन यदि वर्षा भी कम है तब वातावरण का तापमान तेजी से बढ़ता है। इसलिए जलवायु का सामान्य बना रहना इस वर्ग के प्राणियों के लिए अत्यंत आव यक है। साथ ही यदि वृक्षों की संख्या इनके आवास के आस पास कम है तब भी तापमान अधिक बना रहेगा। इसलिए इनके मुख्य आवासों पर वृक्षारोपण करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

वैज्ञानिक, भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, देहरादून

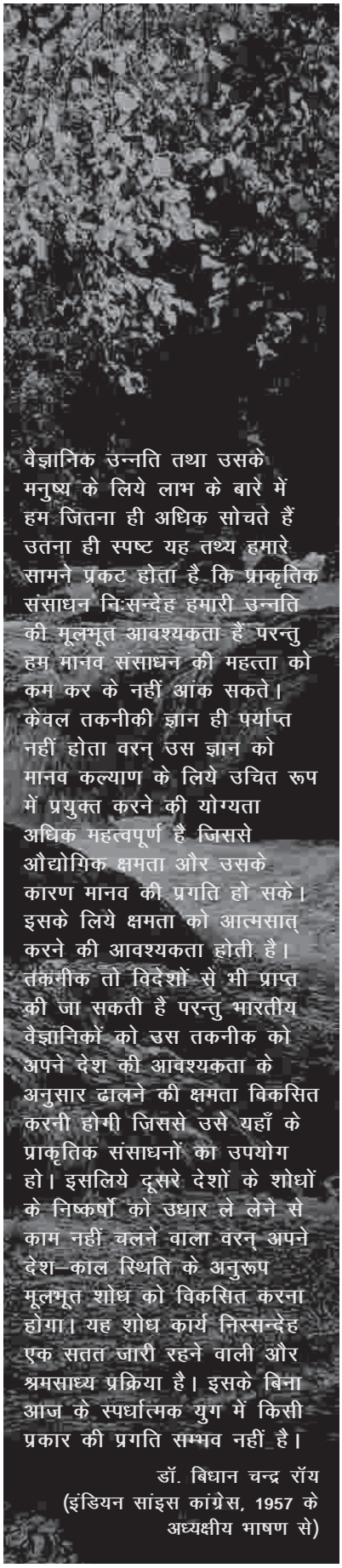

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग

समाचार-पत्रक
अप्रैल से जून 2012

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद

महानिदेशक की कलम से

परिषद 'विज्ञान परिचर्चा' के वर्ष 2012 का द्वितीय अंक (माह अप्रैल–जून, 2012) को प्रकाशित कर रही हैं। इस प्रकाशन में विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र की नवीनतम् उपयोगी एवं रोचक जानकारी के साथ उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद तथा उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र के कार्यक्रमों एवं क्रियाकलापों का समावेश किया जा रहा है।

इस त्रैमास में परिषद द्वारा अनेक महत्वपूर्ण कार्यक्रम सफलतापूर्वक आयोजित किये गये। प्रमुख कार्यक्रमों में 22 अप्रैल, 2012 को भारत तिब्बत सीमा पुलिस के सीमाद्वार देहरादून स्थित ऑडिटोरियम में 'पृथ्वी दिवस' का आयोजन, 'शुक्र के परागमन' की अद्भुत खगोलीय घटना की जानकारी हेतु कार्यशाला/प्रशिक्षण का आयोजन एवं परागमन का सजीव प्रदर्शन 5 जून 2012 को विश्व पर्यावरण दिवस आदि का आयोजन किया गया।

विगत 17 अप्रैल को रिवर बैंक फिल्ट्रेशन परियोजना के अंतर्गत जर्मन विशेषज्ञों के साथ बैठक आयोजित कर परियोजना की समीक्षा की गयी। तीर्थाटन के कारण हो रहे गंगा प्रदूषण के आंकलन हेतु एक महत्वाकांक्षी परियोजना "Study on the casues of pollution and their effects on Hydrological ecology of river Ganga at Rishikesh" स्वीकृत कर शोध प्रारम्भ किया गया है। विगत 11 मई को पेट्रोलियम सेक्टर के परिदृष्य एवं चुनौतियों विषय पर 24 मई, 2012 को 'उत्तराखण्ड के जनमानस' की सेवा में विज्ञान विषय पर लोकप्रिय व्याख्यान का आयोजन किया गया जिसमें भारत सरकार के पूर्व विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री प्रो0 एम0जी0के0 मेनन सहित नामचीन वैज्ञानिकों ने प्रतिभाग किया।

25 मई, 2012 को राज्य में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को दिशा देने हेतु विजन ग्रुप की बैठक इस त्रैमास में आयोजित एक प्रमुख कार्यक्रम है। विज्ञान पत्रकारिता के प्रोत्साहन, इको सिस्टम सर्विसेज पर कार्यशाला, पर्यावरण सम्मेलन– 2012 आदि अन्य प्रमुख कार्यक्रम भी इस त्रैमास की परिषद की उपलब्धियों में शामिल है।

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र के कार्यक्रमों एवं भावी योजनाओं पर विचार विमर्श हेतु शोध सलाहकार समिति की विगत 26 मई को बैठक आयोजित की गई जिसमें भारत सरकार के जैव तकनीकी विभाग की पूर्व सचिव डा0 मंजू शर्मा सहित अन्य प्रख्यात वैज्ञानिक सदस्य उपस्थित रहे। औषधीय एवं सगंध पादपों पर आधारित 9वें एवं 10 वें प्रशिक्षण कार्यक्रमों, जलजनित बीमारियों पर लोकप्रिय व्याख्यान सहित केन्द्र द्वारा महत्वपूर्ण गतिविधियों संचालित की गयी।

आगामी अवधि के लिये महत्पूर्ण कार्यक्रमों सहित परिषद एवं केन्द्र अपने उद्द्वेश्यों के अनुरूप प्रगतिशील है। विगत प्रकाशनों पर प्राप्त अनुकूल प्रतिक्रियाओं एवं उपयोगी सुझावों हेतु पाठकों का हार्दिक आभार है।

डा0 राजेन्द्र डोभाल
महानिदेशक

इस संस्करण में

- जल संबंधी शोधों पर जर्मन विशेषज्ञों से किया मंथन
- विश्व पृथ्वी दिवस
- तीर्थाटन के नाम पर गंगा में कितनी गंदगी इसका आंकलन करेगा यूकॉस्ट
- वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों के विकास पर लोकप्रिय व्याख्यान
- शुक्र के पारगमन पर दो दिवसीय कार्यशाला
- विज्ञान पत्रकारिता के प्रोत्साहन हेतु कार्यशाला का आयोजन
- यूकॉस्ट द्वारा दो दिवसीय कार्यक्रमों का आयोजन
- ईको सिस्टम सर्विसेज पर कार्यशाला का आयोजन
- इनवॉयरमेंट समिट 2012
- पर्यावरण दिवस
- उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र (यू–सर्क)
- "शुक्र पारगमन" के प्रदर्शन हेतु यू–सर्क में अस्थाई प्रेक्षण केन्द्र की स्थापना

जल संबंधी शोधों पर जर्मन विशेषज्ञों से किया मंथन

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद (यूकॉस्ट), उत्तराखण्ड जल संस्थान एवं जर्मनी के विशेषज्ञों ने दिनांक 17 अप्रैल, 2012 को आयोजित बैठक में उत्तराखण्ड में चल रहे जल शोधों पर मंथन किया। बैठक में जर्मन विशेषज्ञों ने वैकल्पिक ऊर्जा शोध परियोजना पर नवीनतम तकनीक का **हस्तारण** किये जाने पर सहमति व्यक्त की।

महानिदेशक, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद डा0 राजेन्द्र डोभाल ने कहा कि परिषद जल संस्थान व यूनिवर्सिटी ऑफ एप्लाइड साइंसेज जर्मनी विगत दो वर्षों से 'डेवलेपमेंट ऑफ रिवर बैंक फिल्ट्रेशन इन हिल रिजन ऑफ उत्तराखण्ड' परियोजना पर कार्य कर रहा है। परियोजना के तहत रिवर बैंक फिल्ट्रेशन व शुद्ध पेयजल की जर्मन वैज्ञानिकों द्वारा संचालित नवीनतम तकनीकों को समझा व क्रियान्वित किया गया है।

शोध परियोजना अंतिम चरण में है। शीघ्र ही लोगों को पीने के लिए शुद्ध पानी उपलब्ध होगा। बैठक में दीर्घ अवधि की शोध परियोजनाओं पर विचार–विमर्श किया गया।

विश्व पृथ्वी दिवस

विश्व पृथ्वी दिवस पर उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद (यूकॉस्ट) की ओर से दिनांक 22 अप्रैल, 2012 को आई0टी0बी0पी0 ऑडिटोरियम में विज्ञान जागरूकता व्याख्यान में ग्लेशियरों पर प्रदूषण के प्रभाव पर चिंता जताई गई। संभव मंच परिवार की ओर से 'डार्विन तुझे सलाम' नाटक का मंचन भी हुआ।

मुख्य अतिथि डा0 एल0 एम0 एस0 पालनी, निदेशक जी0बी0 पंत हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान कोसी कटारमल (अल्मोड़ा) ने ''प्लीजेंट बी दाइ हिल्स, ओ0 अर्थ–दाई स्नो क्लैड माउंटेंस एंड दाई बुड्स'' शीर्षक पर विचार रखे। जैव–विविधता संरक्षण की जरूरत पर बल दिया। आईटीबीपी के उप–महानिरीक्षक श्री संजय सिंघल ने प्रकृति संरक्षण में आई0टी0बी0पी0 की भूमिका पर प्रकाश डाला। यूकॉस्ट के महानिदेशक, डा0 राजेन्द्र डोभाल ने विश्व पृथ्वी दिवस के इतिहास पर प्रकाश डाला एवं यह बताया कि 22 अप्रैल, 1970 को संयुक्त राज्य अमेरिका में पहली बार इस दिवस का आयोजन किया गया। इसमें 20 लाख लोगों ने स्वस्थ स्थायी पर्यावरण के लक्ष्य के साथ प्रतिभाग किया। आज यह विश्व के 174 देशों में मनाया जाता है।

तीर्थाटन के नाम पर गंगा में फैल रही गंदगी का आकलन करायेगी यूकॉस्ट

तीर्थाटन के नाम पर यात्री गंगा में कितनी गंदगी प्रवाहित कर लौट रहे हैं, इसका आंकलन उत्तराखण्ड विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद शुरू करने जा रही है। इसके लिए ऋषिकेश स्थित त्रिवेणी घाट सें लेकर चंद्रभागा पुल तक का स्ट्रेच चुना गया है। गंदगी के आंकलन के साथ ही जलीय जीवों पर पड़ रहे इसके प्रभाव का भी अध्ययन होगा।

लगभग पांच लाख रूपये की लागत से यह काम दो साल में किया जाएगा। इस स्ट्रेच में गंगा में छोड़ी गई गंदगी को लेकर यह पहला प्राजेक्ट है। 'स्टडी आन द कॉलेज ऑफ पॉल्यूशन एंड देयर इफेक्ट्स आन हाईड्रोलाजिकल इकोलॉजी ऑफ रिवर गंगा एट ऋषिकेश' नाम के इस प्रोजेक्ट की अगुआई पं ललित मोहन शर्मा राजकीय महाविद्यालय ऋशिकेष के जंतु विज्ञान विभाग के एसोसिएट प्रोफेसर देवमणि त्रिपाठी करेंगे।

वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों के विकास पर लोकप्रिय व्याख्यान

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद द्वारा दिनांक 11 मई, 2012 को परिषद के सभागार में यूनिवर्सिटी ऑफ पेट्रोलियम एंड एनर्जी स्टडीज के कुलपति प्रो0 एस0 जे0 चोपड़ा द्वारा 'पेट्रोलियम रिफाइनरी सेक्टर इंडियन पर्सपेक्टिव एंड चैलेंजेज' विषय पर लोकप्रिय विज्ञान व्याख्यान का आयोजन किया गया। व्याख्यान में ईंधन की लगातार बढ़ रही मांग पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि इससे आने वाले समय में समस्या उत्पन्न हो सकती है, इसके निदान के लिए वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों का विकास जरूरी है। पेट्रोलियम क्षेत्र में हुआ विकास बढ़ती मांग के आगे नहीं ठहर पा रहा है। भविष्य के मद्देनजर अभी से पेट्रोलियम पदार्थों की बचत पर बल दिया गया।

शुक्र के पारगमन पर दो दिवसीय कार्यशाला

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद, स्पेक्स और विज्ञान प्रसार के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 17 मई, 2012 को मसूरी यूथ हॉस्टल में दो दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन यूकॉस्ट के महानिदेशक, डा0 राजेन्द्र डोभाल ने किया। इस कार्यशाला के जरिए युवा वैज्ञानिकों को वैज्ञानिक तौर –तरीकों की जानकारी के साथ–साथ दूरदर्शी यंत्रों का व्यवहारिक ज्ञान भी दिया गया। इस मौके पर डा0 डोभाल ने कहा कि विज्ञान परक समाज की स्थापना के लिए अपने आसपास में घटित हो रही घटनाओं के वैज्ञानिक पक्ष जानने की नितांत आवश्यकता है। इस अवसर पर बोलते हुये स्पेक्स के सचिव डा0 बृजमोहन शर्मा ने बताया कि 6 जून को होने वाली खगोलीय घटना शुक्र का पारगमन तीन ग्रहों के एक सीध में आने से होगा। सूर्य, शुक्र और पृथ्वी एक लाइन में होंगे। पूर्व में शुक्र के पारगमन की घटना 2004 में हुई थी और अब 6 जून 2012 के बाद वर्ष 2117 में होगी। 6 जून को यह खगोलीय घटना सूर्योदय से लेकर सुबह 10 बजकर 15 मिनट तक देखी जा सकती है। कार्यशाला में 70 एमएम दूरबीन का व्यवहारिक प्रशिक्षण भी दिया गया।

विज्ञान पत्रकारिता के प्रोत्साहन हेतु कार्यशाला का आयोजन

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद (यूकॉस्ट) एवं लोकहित फाउंडेशन, देहरादून के संयुक्त तत्वाधान में एक दिवसीय **''इनोवेशन इन साइंस जर्नलिज्म टू प्रमोट ऐन्वायरमेंट अवेयरनेस''** नामक कार्यशाला का आयोजन दिनांक 09 जून, 2012 को देहरादून में किया गया। कार्यशाला का उद्घाटन चिकित्सा स्वास्थ्य एवं विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्री श्री एस0एस0 नेगी ने किया। श्री नेगी ने मीडिया, लेखकों एवं वैज्ञानिकों से आपस में समन्वय स्थापित कर कार्य करने का आह्वाहन किया ताकि आम जनमानस तक विज्ञान में हो रहे प्रयोगों एवं आविष्कारों को सरलता से पहुंचाया जा सके। कार्यशाला में यूकॉस्ट के महानिदेशक डा0 राजेन्द्र डोभाल, किसान अधिकार प्राधिकरण के अध्यक्ष पी0 एल0 गौतम, डी0ए0वी0 पी0जी0 कॉलेज के प्राचार्य डा0 देवेंन्द्र भसीन, लोकहित फाउंडेशन के अध्यक्ष बी0 चंद्रमोहन आदि के अलावा 50 प्रतिभागी उपस्थित थे।

यूकॉस्ट द्वारा दो दिवसीय कार्यक्रमों का आयोजन

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद (यूकॉस्ट), राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (नासी) उत्तराखण्ड चेप्टर एवं उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र (यूसर्क) द्वारा संयुक्त रूप से तीन दिनों तक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को उत्तराखण्ड राज्य में नयी दिशा देने हेतु वृहद कार्यक्रमों का आयोजन किये गये। कार्यक्रमों का उद्देश्य विज्ञान व प्रौद्योगिकी का राज्य में विस्तार था।

कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रथम दिवस दिनांक 24 मई, 2012 को आई0सी0एफ0आर0ई0 (एफ0आर0आई0 कैम्पस) प्रेक्षागृह में भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (नासी) व्याख्यान माला का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में पिछले दशकों में भारत को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में नयी दिशा देने वाले प्रख्यात वैज्ञानिक प्रो0 एम0जी0के0 मेनन, पूर्व केन्द्रीय, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री, भारत सरकार द्वारा " Science & Society in the Service of the People of Uttarakhand" विषय पर व्याख्यान दिया गया। प्रो0 बलराम भार्गव, डिपार्टमैंट ऑफ कार्डियोलॉजी, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स), नई दिल्ली द्वारा "Challenges and Opportunities for Healthcare Innovation in India" विषय पर व्याख्यान दिया गया। प्रो0 भार्गव चिकित्सा जगत की जानी मानी हस्ती हैं एवं उनका नाम आम आदमी तक पहुँच वाले कृत्रिम हृदय स्टेंट की परिकल्पना एवं उसे यर्थाथ बनाने के लिए भी लिया जाता हैं।

कार्यक्रम श्रृखंला के द्वितीय दिवस दिनांक 25 मई, 2012 को राजधानी देहरादून में उत्तराखण्ड राज्य में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को नई दिशा देने हेतु विजन ग्रुप मीटिंग का आयोजन किया गया। इस बैठक में देश भर के विख्यात वैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक सलाहकारों ने प्रतिभाग किया।

ईको सिस्टम सर्विसेज पर कार्यशाला का आयोजन

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद (यूकॉस्ट) एवं सेन्टर फॉर ईकोलॉजी डेवलपमेन्ट एण्ड रिसर्च, देहरादून के संयुक्त तत्वाधान में ''पारिस्थितिकी तंन्त्र सेवाओं का मूल्य एवं भुगतान'' नामक कार्यशाला का आयोजन दिनांक 30 जून, 2012 को इण्डियन इन्सटीट्यूट ऑफ रिमोट सेन्सिंग, देहरादून में किया गया। कार्यशाला में देश के हिमालयी राज्यों से प्रवाहित होने वाली पर्यावरणीय सेवाओं (ईको सिस्टम सर्विसेज) के मूल्य को समझने एवं निर्धारित किए जाने के लिए सभी 12 हिमालयी राज्यों को साझी पहल करते हुए वैज्ञानिक शोध किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया। कार्यशाला का मुख्य उदेद्श्य एक फार्मूला तैयार करना था जिसके आधार पर राज्यों को इन सेवाओं का उचित भुगतान एवं बजट आवंटन किया जा सके। कार्यशाला में पूर्व मुख्य सचिव, उत्तराखण्ड शासन, डा0 आर0 एस0 टोलिया, कर्नाटक के शोध संस्थान के अर्थशास्त्री, डा0 जी0 के0 काडेकोडी, मुख्य वन संरक्षक, डा0 आर0 बी0 एस0 रावत, यूकॉस्ट के महानिदेशक, डा0 राजेन्द्र डोभाल, एच0एन0बी0 गढ़वाल विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपतियों, प्रो0 ए0 एन0 पुरोहित, प्रो0 एस0 पी0 सिंह, आई0आई0टी0 मुम्बई के डा0 विनीश कथूरिया, वन विकास निगम, उत्तराखण्ड के प्रबन्ध निदेशक, डा0 श्रीकान्त चंदोला, आई0सी0एफ0आर0ई0 के डा0 वी0 आर0 एस0 रावत, हिमोत्थान परियोजना की डा0 मालविका चौहान, चिया के अधिशासी निदेशक, डा0 पुश्किन फर्त्याल समेत तकरिबन तीन दर्जन वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों ने भाग लिया। कार्यशाला की संस्तुतियों को प्रकाशित कर योजना आयोग, भारत सरकार को अग्रसरित किया जायेगा।

इनवॉयरमेंट समिट 2012

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद व भारतीय उद्योग परिसंघ (सी0आई0आई0) के सहयोग से राजपुर रोड स्थित होटल मधुबन में दिनांक 31 मई, 2012 को चौथी इनवॉयरमेंट समिट का उद्घाटन पूर्व मुख्य सचिव, उत्तराखण्ड सरकार, डा0 आर0एस टोलिया ने किया। इस सत्र में बोलते हुए डा0 टोलिया ने कहा कि पर्वतीय राज्य के स्थिर विकास के लिए उच्च आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरण क्षेत्र में मजबूत तालमेल जरूरी है साथ ही उद्योग जगत पर्यावरण के प्रति अपनी चिंता बढ़ाए और नई तकनीकों का पर्यावरण संतुलन के लिए उपयोग करें।

यूकॉस्ट के महानिदेशक डा0 राजेन्द्र डोभाल ने प्राकृतिक संसाधनों के रूप में सोलर एनर्जी, वर्षा जल संग्रहण के इस्तेमाल पर जोर दिया। सीआईआई उत्तराखण्ड चैप्टर के अध्यक्ष राकेश अग्रवाल ने ग्रीन टेक्नोलॉजी, प्राकृतिक ऊर्जा संसाधन, शहरी पर्यावरण की समस्या के वैज्ञानिक हल की बात कही।

उद्घाटन सत्र में प्रसिद्ध फोटोग्राफर श्रीश कपूर ने गंगा, चार–धाम, पहाड़ की नदी प्रणाली, टिहरी झील, गढ़वाल–कुमाऊं के लैंडस्केप आदि से संबंधित 146 स्लाइड दिखाई। डा0 टोलिया ने पूर्व पुलिस महानिदेशक आलोक बिहारी लाल की ग्लोबल वार्मिंग पर आधारित पेटिंग व फोटो प्रदर्शनी का भी उद्घाटन किया।

पर्यावरण दिवस

उत्तराखण्ड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद ने दिनांक 05 जून, 2012 को परिषद के सभागार में पर्यावरण दिवस मनाया। इस अवसर पर पर्यावरण से सम्बन्धित व्याख्यानों का आयोजन किया गया। इस मौके पर परिषद के महानिदेशक, डा0 राजेन्द्र डोभाल ने पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति से लेकर उसके विभिन्न घटकों के बारे में बताया, उन्होंने जानकारी दी कि पर्यावरण किन–किन चीजों से मिले रूप को कहते है।

उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र (यू–सर्क)

औषधीय एवं संगध पौधों पर आधारित नौवें एवं दसवें उद्यमिता प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन

उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र (यू–सर्क) के वित्तीय सहयोग से सी.एस.आई.आर. केन्द्रीय औषधीय एवं संगध पौधा संस्थान (CIMAP) द्वारा प्रायोजित परियोजना के अन्तर्गत नौवें प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन दिनांक 13–14 अप्रैल, 2012 को सी.एस.आई. आर. (CSIR) केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान सी.बी.आर.आई. (CBRI) रूड़की जिला हरिद्वार में किया गया। उद्यमिता प्रशिक्षण कार्यक्रम में उत्तराखण्ड के विभिन्न जनपदों के 28 प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया। प्रशिक्षणार्थियों को उत्तराखण्ड राज्य के अनूकुल आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण औषधीय एवं संगध पौधें की उन्नत कृषि तकनीकी प्रौद्यौगिकी एवं संगध पौधों के आसवन एवं मूल्यांकन के बारे में विस्तार पूर्वक जानकारी प्रदान की गई।

इसी क्रम में उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र (यू–सर्क) द्वारा वित्तपोषित दसवें उद्यमिता प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन दिनांक 02–03 मई, 2012 को (CSIR) केन्द्रीय औषधीय एवं संगध पौधा संस्थान (CIMAP) के शोध केन्द्र पंतनगर, जनपद उधमसिंह नगर में सम्पन्न हुआ, जिसमें प्रदेश भर के 37 प्रतिभागियों ने भाग लिया। प्रतिभागियों को राज्य हेतु आर्थिक रूप से लाभप्रद औषधीय एवं संगध पौधों की उन्नत खेती, उनका प्रसंस्करण, मूल्यांकन तथा उनकी ब्रिकी के सम्बन्ध में प्रशिक्षण दिया गया।

उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र (यू-सर्क) की 'शोध सलाहकारसमिति' की बैठक का आयोजन

दिनांक 26 मई, 2012 को धनोल्टी, मसूरी में उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र को उत्तराखण्ड राज्य में दिशा देने हेतु शोध सलाहकार समिति की बैठक का आयोजन डा0 मन्जू शर्मा, भूतपूर्व सचिव, जैव प्रौद्यौगिकी विभाग, भारत सरकार की अध्यक्षता में किया गया। बैठक में यू–सर्क के निदेशक, डा0 राजेन्द्र डोभाल एवं शोध सलाहकार समिति के सदस्य एवं विशेषज्ञ डा0 वी.पी.डिमरी, भूतपूर्व निदेशक, एन.जी.आर.आई., नई दिल्ली, प्रो0 प्रमोद टण्डन, भूतपूर्व कुलपति, नेहू शिलोंग, डा0 ओ.पी. यादव मुख्य कार्यकारी अधिकारी नैशनल हार्ट इन्स्टीट्यूट नई दिल्ली, डा0 हर्षवर्धन सिम्वल, आई.आईटी. रूड़की के द्वारा महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये।

बैठक में उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र की गतिविधियों एवं कार्य प्रणाली के उन्नयन हेतु सुझाव दिये गये। विशेषज्ञों ने विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों यथा– भौतिक विज्ञान एवं भूगर्भ विज्ञान, आपदा प्रबन्धन, पर्यावरण विज्ञान, जीव विज्ञान, बायोमेडिकल एवं जल विज्ञान में शोध क्षेत्रों की पहचान कर उनमें काम किये जाने की आवश्यकता बतायी। इस अवसर पर यू–सर्क तथा यूकास्ट के सभी अधिकारी उपस्थित थे।

''स्वच्छ पेयजल एवं जल जनित बीमारियां'' विषय पर लोकप्रिय विज्ञान व्याख्यान का आयोजन''

यू–सर्क के वित्तीय सहयोग से दिनांक 26 मई, 2012 को मसूरी गर्ल्स इण्टर कालेज, मसूरी में ''स्वच्छ पेयजल एवं जल जनित बीमारियां'' विषय पर लोकप्रिय विज्ञान व्याख्यान इन्डियन काउंसिल फार मेडिसिन रिसर्च के पूर्व निदेशक पदमश्री डा0 विनोद प्रकाश शर्मा द्वारा दिया गया। डा0 शर्मा ने अपने व्याख्यान में बताया कि अफ्रीकी एवं एशियाई देशों में 38 फीसदी लोग अशुद्ध पानी पी रहे है जिसके फलस्वरूप इन देशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग जल जनित बीमारियों के कारण प्रभावित हो रहा है। कार्यक्रम में यूकास्ट के जिला समन्वयक, मसूरी गर्ल्स इण्टर कालेज की प्रधानाचार्या, अध्यापक, अध्यापिकाओं सहित मसूरी के विभिन्न स्कूल एवं कालेजों से आये छात्र एवं छात्राओं ने सक्रिय प्रतिभाग किया।

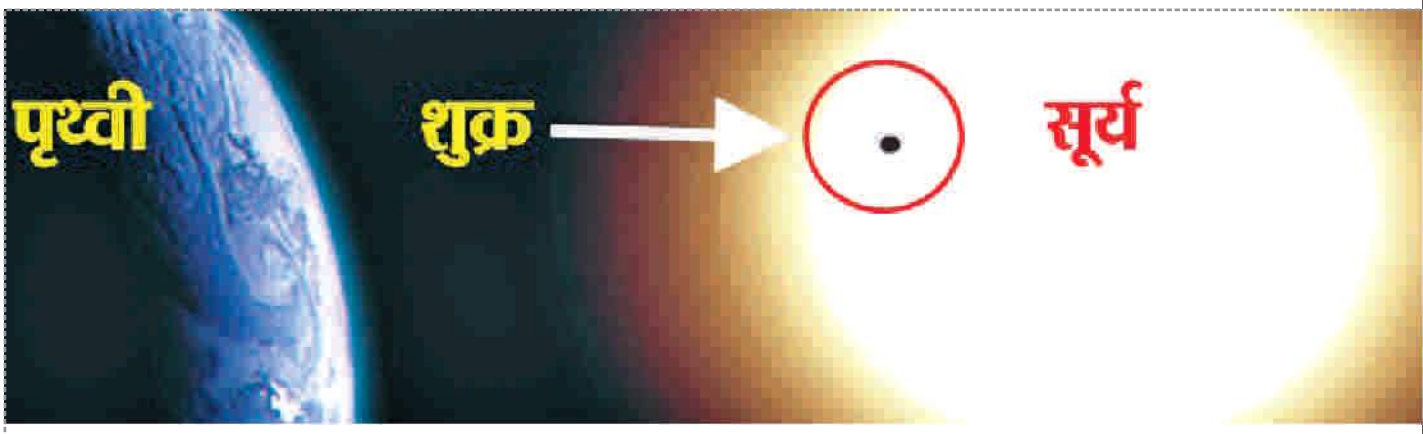

"शुक्र पारगमन" के प्रदर्शन हेतु यू-सर्क में अस्थाई प्रेक्षण केन्द्र की स्थापना

6 जून, 2012 को घटित इस शताब्दी की महत्वपूर्ण खगोलीय घटना 'शुक्र पारगमन' हेतु उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र (यू–सर्क) ने स्पेक्स, यूकॉस्ट एवं विज्ञान प्रसार के सहयोग से केन्द्र में स्थापित किये गये प्रेक्षण यन्त्रों से केन्द्र में आये हुए विद्यार्थियों एवं आम जन मानस को उक्त घटना से सम्बन्धित वैज्ञानिक जानकारियों से अवगत करवाया। इस समबंध में राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्यौगिकी सूचना परिषद् (NCSTC) विज्ञान एवं प्रौद्यौगिकी विभाग एवं विज्ञान प्रसार, भारत सरकार नई दिल्ली के उत्प्रेरण एवं पंजाब विश्वविद्यालय चंढीगढ़ में विगत माह अप्रैल 2012 में आयोजित दो दिवसीय कार्यशाला में उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र (यू–सर्क) के वैज्ञानिक डा0 ओमप्रकाश नौटियाल ने मास्टर रिसार्स पर्सन के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त किया।

खगोल विज्ञान के प्रति छात्रो की रूचि पैदा करने एवं जनमानस को जानकारी प्रदान करने हेतु 17–18 मई, 2012 को मसूरी में आयोजित दो दिवसीय कार्यशाला में यू–सर्क के वैज्ञानिक डा0 ओ0 पी0 नौटियाल ने व्याख्यान दिया।

उन्होंने बताया कि जिस प्रकार पृथ्वी तथा सूर्य के बीच चन्द्रमा के आ जाने से सूर्यग्रहण की घटना घटित होती है, उसी प्रकार पृथ्वी एवं सूर्य के बीच शुक्र ग्रह के आने से शुक्र पारगमन की घटना घटित होती है। शुक्र ग्रह पृथ्वी से दूर एवं सूर्य से आकर में बहुत छोटा होने के कारण सूर्य को ढकने के स्थान पर, सूर्य चकती के भीतर से बिन्दु रूप में गुजरता हुआ दिखाई देता है। यह खगोलीय घटना केवल तभी घटित होती है जब सूर्य शुक्र एवं पृथ्वी एक ही सीध मे होते है। टेलिस्कोप के अविष्कार के उपरान्त अब तक मात्र आठ बार सन् 1631, 1639, 1761, 1874, 1882, 2004 एवं 2012 में ही उक्त घटना घटित हुई। ज्ञानतव्य है कि शुक्र पारगमन की घटना 121.5, 8, 105.5, 8 वर्षो के अन्तराल में घटित होती है, जो कि 243 वर्षो की मूल आवृत्ति को दर्शाती हे। 21 वीं सदी में 121.5 वर्षो के अन्तराल के उपरान्त शुक्र पारगमन की घटना 06 जून 2004 को घटित हुई थी (इससे पूर्व यह घटना 06 दिसम्बर 1882 को घटित हुई थी) पुनः 8 वर्षो के उपरान्त यह घटना 06 जून 2012 को घटित हुई तथा भविष्य में यह 105.5 वर्षो के उपरान्त 11 दिसम्बर 2117 एवं पुनः 8 वर्षो के अन्तराल में 08 दिसम्बर 2125 को घटित होगी। पृथ्वी एवं शुक्र की कक्षीय गति के आधार पर देखा जा सकता है कि प्रत्येक 19 माह (1.6 वर्षो) के अन्तराल पर पृथ्वी एवं शुक्र आमने–सामने होते है, तथा प्रत्येक 8 वर्षो के अन्तराल में ये दोनों एक सीध में होते है। परन्तु शुक्र ग्रह की कक्षा पृथ्वी की कक्षा से लगभग 3.4 डिग्री झुके होने के कारण यह खगोलीय घटना दुर्लभ एवं विशेष बन जाती है।

पहल

विश्व पृथ्वी दिवस प्रारम्भ

डार्विन की 12 शानदार प्रस्तुतियाँ

उत्तराखण्ड विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद के उत्प्रेरण और आर्थिक सहयोग से डार्विन तुझे सलाम नाटक की श्रृंखलाओं के विस्तार में विश्व पृथ्वी दिवस 22 अप्रैल 2012 को गढ़वाल मण्डल के लिए प्रथम प्रस्तुति का शुभारम्भ किया गया। विश्व पृथ्वी दिवस पर उत्तराखण्ड विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद द्वारा आयोजित कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे– गोबिन्द बल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान कोसी कटारमल अल्मोड़ा के निदेशक डा0 लोक मान सिंह पालनी और प्रस्तुति का स्थान था–रेनबो आडिटोरियम आई0टी0बी0पी0 सीमाद्वार देहरादून। कार्यक्रम का संचालन पहल की अध्यक्ष श्रीमती कमला पन्त द्वारा किया गया।

उत्तराखण्ड विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद के महानिदेशक डा0 राजेन्द्र डोभाल, वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी डा0 डी0 पी0 उनियाल, विज्ञान धाम के परियोजना अधिकारी डा0 बी0 पी0 पुरोहित वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी डा0 सरिता खण्डका, यूसर्क की वैज्ञानिक डा0 मन्जू सुन्दरियाल, वैज्ञानिक डा0 भवतोष शर्मा, डा0 नमिता कार्की, डा0 ओ0 पी0 के नौटियाल, डा0 कीर्ति जोशी, डा0 प्रशान्त सिंह, श्री अभिनव दुबे तथा आई0टी0बी0पी0 उप महानिरीक्षक श्री संजय सिंघल के साथ उनकी टीम के अधिकारियों, कई शोध छात्रों, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों सहित लगभग 250 लोगो द्वारा इस प्रस्तुति को देखा गया। प्रोजेक्टर के माध्यम से डार्विन के समय के सामाजिक जीवन, पेरू आदि शहरो की यात्रा व बीगल जहाज की गतिविधियों के साथ प्रस्तुत इस नाटक में युवा डार्विन की भूमिका में मनु आहूजा, प्रौढ़ डार्विन की भूमिका में संजय गैरोला तथा डार्विन की इंटरनेट तथा पत्र पत्रिकाओं में प्राप्त फोटो से हूबहू मिलते चेहरे और व्यक्तित्व के वरिष्ठ रंगकर्मी श्री एस0पी0 ममगई के अभिनय ने जैसे दर्शकों को फिर से डार्विन के युग में ला खड़ा किया। डार्विन की पत्नी ऐमा की भूमिका में हेमा पन्त व पुत्री ऐनी की भूमिका में कुसुम पन्त ने दर्शकों को भावविभोर भी किया। कैप्टन फिट्जरोय की भूमिका में पवन डबराल, प्रोफेसर हक्सले की भूमिका में दीपक बंगवाल, प्रो0 हैस्लो की भूमिका में अनुराग जोशी, पादरी की भूमिका में वरिष्ठ कलाकार प्रदीप शर्मा, डार्विन के पिता की भूमिका में जतिन सोनी, डार्विन के स्कूल प्रिंसिपल की भूमिका में कुमार संजय खैरवाल तथा अन्य पात्रों सावित्री धामी, कफील अहमद, सार्थक नेगी, पार्थ शर्मा, तान्या शर्मा, नन्दिनी पुजारी तथा कंचन विष्ट द्वारा भी अपने–अपने पात्रों को पूरी गरिमा से निभाया गया। तालियों की गड़गड़ाहट से पूरा आडिटोरियम गूज उठा और सभी ने अपनी सीट पर खड़े होकर उत्साह भरे स्वर में बोला– डार्विन तुझे सलाम।

नाट्क की प्रस्तुति के उपरान्त मुख्य अतिथि डा0 लोक मान सिंह पालनी ने पीपुल्स एसोसिएशन ऑफ हिल एरिया लान्चर्स (पहल) की इस प्रस्तुति को

विज्ञान लोकप्रियकरण की दिशा में मील का पत्थर बताया और उत्तराखण्ड विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद से अपेक्षा की कि इस प्रस्तुति को उत्तराखण्ड के सभी स्कूली बच्चों को दिखाया जाय। उत्तराखण्ड विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद के महानिदेशक डा0 राजेन्द्र डोभाल ने अपने उद्बोधन में कहा कि नाटक के माध्यम से डार्विन को समझने का यह प्रयास अद्भुत है। उन्होंने कलाकारों को उनके उत्तम अभिनय के लिए सम्मानित करने का भी बचन दिया और कहा कि वे इस नाटक की अन्य प्रस्तुतियों के लिए भी निरन्तर प्रयत्नशील रहेंगें। पीपुल्स एसोसिएशन आफ हिल एरिया लान्चर्स (पहल) से उन्होंने अपेक्षा की कि भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनी पर भी ऐसी ही नाट्य प्रस्तुतियाँ तैयार की जाय। आई0टी0बी0पी0 के उप महा निरीक्षक श्री संजय सिंघल द्वारा इस नाटक की एक प्रस्तुति केवल आई0टी0बी0पी0 के जवानों तथा उनके परिवारों के लिए दिये जाने का अनुरोध किया गया। डार्विन तुझे सलाम नाटक की दो प्रस्तुतियाँ दिनांक 23 अप्रैल 2012 को पुनः आई0टी0बी0पी0 के रेनबो आडिटोरियम में दी गई जिन्हें स्थानीय स्कूलों के कक्षा नौ से बारह तक के बच्चों एवं उनके शिक्षकों सहित पॉच सौ दर्शकों ने देखा और सराहा। सभी शिक्षकों व बच्चों द्वारा प्राप्त संस्तुतियों से सिद्ध होता है कि नाटक की विषय वस्तु और मंचन दोनों ही दर्शकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में समर्थ रहे।

डार्विन तुझे सलाम की द्वितीय श्रृंखला में दिनांक 8 मई 2012 को हरिद्वार के टाउन हॉल में दो प्रस्तुतियां दी गई जिसे बीस स्कूलों के 1000 बच्चों के साथ उनके शिक्षकों सहित गुरूकुल कांगडी के भौतिक विज्ञान के विभागाध्यक्ष प्रो0 पी0 पी0 पाठक, डा0 सन्ध्या अग्रवाल, श्री विजेन्द्र सिंह, श्री प्रवीण कुमार, सुश्री स्नेह लता, श्री हरिश भदौला, सुश्री सुनीता सिंह, श्री एस0के0 त्यागी व श्री नीरज शर्मा सहित हरिद्वार के कई वरिष्ठ पत्रकारों द्वारा भी देखा और सराहा गया। हरिद्वार में राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस के जिला समन्वयक श्री सुभाष चन्द्र शर्मा तथा सहसमन्वयक श्री संजीव शर्मा द्वारा संयोजन किया गया। हरिद्वार के समाचार पत्रों में प्रकाशित खबरों से सिद्व होता है कि नाटक ने हरिद्वार वासियों पर अपनी विषय वस्तु और प्रस्तुति की छाप छोड़ी है।

डार्विन तुझे सलाम श्रृंखला की तीसरी कड़ी में दो प्रस्तुतियां जनपद पौड़ी के कोटद्वार स्थित राजकीय बालिका इण्टर कालेज के हॉल में दिनांक 10 मई 2012 को दी गई। इस प्रस्तुति को जनपद पौड़ी के 14 स्कूलों के बच्चों व शिक्षकों सहित खण्ड शिक्षा अधिकारी श्री जयवीर सिहं यादव, राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस के अकादमिक अध्यक्ष श्री विनोद चन्द्र कुकरेती, प्रधानाचार्य सुश्री बृजेश रानी, श्री गजेन्द्र नेगी, श्री दिनेश चन्द्र भट्ट, सुश्री विजय लक्ष्मी, शंम्भू प्रसाद, सुश्री वन्दना भारद्वाज, डा0 जितेन्द्र सिंह व शहर के गणमान्य नागरिकों द्वारा देखा और सराहा गया। कोटद्वार में इन प्रस्तुतियों का संयोजन राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस के जिला समन्वयक श्री के0 के0 जोशी द्वारा किया गया। दर्शकों से मिली प्रतिक्रिया के बाद कई अन्य विद्यालयों द्वारा भी इस नाटक की प्रस्तुतियों का आग्रह किया जा रहा है।

विश्व पर्यावरण दिवस 5 जून 2012 को गोबिन्द बल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान कटारमल कोसी अल्मोड़ा में एक दिन विद्यार्थियों के साथ कार्यक्रम में प्रस्तुत डार्विन तुझे सलाम के दर्शकों में मुख्य अतिथि पद्मश्री डा0 ललित पाण्डेय, डा0 लक्ष्मण सिंह बटरोही, वरिष्ठ पत्रकार श्री पी0 सी0 जोशी, डा0 दिनेश तिवारी, डा0 बी0 सी0 पाण्डेय तथा संस्थान के सभी वैज्ञानिकों, सहयोगी अभिकर्मियों तथा स्थानीय नागरिकों सहित 5 दर्जन स्कूलों के चयनित विद्यार्थी तथा उनके शिक्षक थे। संस्कृति नगरी अल्मोड़ा के रंगकर्मियों द्वारा इस नाटक की विषयवस्तु और प्रस्तुति की भूरि–भूरि प्रशंसा की गई। डार्विन तुझे सलाम की प्रस्तुति के उपरान्त निदेशक महोदय से पूर्व में प्राप्त निर्देशानुसार द्वितीय नाटक एक है पृथ्वी एक थी गौरा का मंचन किया गया। उत्तराखण्ड में चिपको आन्दोलन की प्रणेता स्व0 गौरादेवी के जीवन पर आधारित इस नाटक में वनों की रक्षा सहित उनसे होने वाले लाभों का ज्ञान देकर पर्यावरण संरक्षण का ऐसा सन्देश दिया जा सका जिसने विश्व पर्यावरण दिवस की संकल्पना को साकार कर दिया। प्रस्तुति के समापन अवसर पर संभव मंच परिवार के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत पर्यावरण की अवधारणा उपयोग और संरक्षण पर आधारित जनगीत जिन्दगी का ताना–बाना समझो भाई के साथ जो संमा बांधा उसके साथ हॉल में बैठे सभी दर्शक ऐसे बधे कि सारा हॉल स्वर में स्वर मिला कर गा उठा–जिन्दगी का ताना–बाना समझो भाई।

द्वितीय दिवस 6 जून की प्रस्तुतियाँ गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्त नगर में होनी थी किन्तु वहाँ पर हुई किसी दुर्घटना के कारण निदेशक गोबिन्द बल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान कटारमल कोसी अल्मोड़ा के निर्देश पर दो प्रस्तुतियां रानीखेत नगर के प्रसिद्ध दीवान सिंह आडिटोरियम में की गई। आर्मी पब्लिक स्कूल के प्रधानाचार्य श्री कमलेश जोशी के संयोजन में नगर के कक्षा 9 से 12 तक के स्कूली बच्चों व शिक्षकों, कई गणमान्य नागरिकों, गैर सरकारी संस्थाओं के पदाधिकारियों व रानीखेत नगर के प्रबुद्ध नाट्य मण्डल के सदस्यों सहित 400 से भी अधिक लोगों द्वारा डार्विन तुझे सलाम तथा एक है पृथ्वी एक थी गौरा जैसी सशक्त प्रस्तुतियों को देखा गया। बूढ़े डार्विन की भूमिका में वरिष्ठ रंगकर्मी श्री एस0 पी0 ममगई दर्शकों पर छाये रहे। रानीखेत से प्रकाशित समाचार पत्रों में बूढ़े डार्विन के चित्र सिद्ध करते हैं कि यह नाटक नगर में कितना लोकप्रिय हुआ। सभी ने दोनों प्रस्तुतियों और जिन्दगी का ताना–बाना समझो भाई जनगीत की भूरि–भूरि प्रशंसा की और कहा कि ऐसी प्रस्तुतियाँ राज्य के सुदूरवर्ती अंचलों तक पहुँचनी चाहिये। आर्मी के अधिकारियों द्वारा पर्यावरण टास्क फोर्स की टीम के लिये भी इस प्रस्तुति को दिखाने की मांग की गई।

विश्व प्रौद्योगिकी दिवस

11 मई को पहल संस्था के तत्वावधान में विभिन्न विद्यालयों एवं तकनीकी संस्थानों में विश्व प्रौद्योगिकी दिवस का आयोजन किया गया। इस अवसर पर व्याख्यान, क्विज एवं निबन्ध

प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। सरस्वती देव सिंह रा0इ0का0 पिथौरागढ़ में इस अवसर पर अतिथि व्याख्याता भी आयोजित किये गये। क्विज प्रतियोगिता में उत्कृष्ट विद्यार्थियों को पुरस्कृत भी किया गया।

विश्व पर्यावरण दिवस

5 जून को विष्व पर्यावरण दिवस का आयोजन किया गया। इस अवसर पर समस्त विद्यालयों के माध्यम से पर्यावरण संचेतना हेतु कार्यक्रम आयोजित किये गये। विभिन्न विद्यालयों के द्वारा इस अवसर पर जागरूकता रैलियों का आयोजन किया गया। मानस एकेडमी पिथौरागढ़ में जनपद स्तरीय विज्ञान प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। प्रदर्शनी का मुख्य विषय ''हमारी धरती–हमारा भविष्य'' विषय पर आयोजित की गई। प्रदर्शनी में विद्यार्थियों द्वारा अत्यन्त संवेदनशील प्रस्तुतियाँ दी गईं।

शुक्र पारगमन

विज्ञान प्रसार नई दिल्ली एवं यूकॉस्ट देहरादून के संयुक्त तत्वावधान में 8 जून 2012 को शुक्र पारगमन देखने हेतु पहल संस्था द्वारा प्रभावी प्रयास किये गये। प्रत्येक विज्ञान प्रसार केन्द्र से सम्बन्धित संस्था को टेलीस्कोप तथा सोलर फिल्टर उपलब्ध कराये गये। विज्ञान प्रसार केन्द्रों के माध्यम से आम जनमानस एवं विद्यार्थियों को शुक्र पारगमन की दुर्लभ खगोलीय घटना से रू–ब–रू कराया गया। कई स्थानों पर मौसम की खराबी के कारण कुछ लोग इस घटना के अवलोकन से वंचित रह गये लेकिन जिन स्थानों पर मौसम ठीक था उन स्थानों पर लोगों ने इस घटना का आनन्द लिया। इससे पूर्व इन संस्थाओं को यूथ हॉस्टल मसूरी में स्पैक्स नामक संस्था द्वारा विधिवत् प्रशिक्षण दिया गया। कुमाँऊ क्षेत्र से श्री बसन्त कुमार भट्ट की भूमिका संदर्भ व्यक्ति के रूप में रही। शुक्र पारगमन को जन मानस तक सुलभ कराने में पहल एवं स्पैक्स संस्था के साथ–साथ नेवी, लोक संचार एवं विकास समिति, हिमालयन सेवा समिति, आशा संस्था, ओम जन विकास समिति, काल्ड, अरण्य सेवा संस्था समेत कई अन्य संस्थाओं की प्रभावी भूमिका रही।

स्टीरियस परियोजना प्रारम्भ

आम काश्तकारों में आजीविका के नए अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से टेक्नोलॉजी ट्रान्सफर डिविजन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग भारत सरकार के तत्वावधान में ''पहल'' संस्था द्वारा स्टीरियस परियोजना के माध्यम से मशरूम उत्पादन एवं संवर्धन कार्य प्रारम्भ किया गया। इस परियोजना द्वारा मशरूम की सामान्य प्रचलित प्रजातियों के अतिरिक्त कई अन्य विदेशी मशरूम प्रजातियों के संवर्धन हेतु कार्य किया जा रहा है। परियोजना के अन्तर्गत 3 ग्रामों को बतौर पायलेट परियोजना के लिए चिन्हित कर काश्तकारों के लिए जागरूकता कार्यक्रम प्रारम्भ किये जा रहे हैं। इन्ही ग्रामों में भविष्य में परियोजनान्तर्गत कार्य किया जाएगा।

पहल के आगामी कार्यक्रम

राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस

मुख्य विषय

ऊर्जा : सम्भावनाऐं, उपयोग एवं संरक्षण

उप विषय

1. ऊर्जा संसाधन
2. ऊर्जा तंत्र
3. ऊर्जा एवं समाज
4. ऊर्जा एवं पर्यावरण
5. ऊर्जा प्रबन्धन एवं संरक्षण
6. ऊर्जा नियोजन तथा मॉडलिंग

1.	राज्य स्तरीय अभिमुखीकरण कार्यशाला	:	5–6 जुलाई, आम्रपाली संस्थान, हल्द्वानी
2.	जनपद/ब्लॉक स्तरीय अभिमुखीकरण कार्यशाला	:	जुलाई प्रथम/द्वितीय सप्ताह
3.	जनपद/ब्लॉक स्तरीय बाल विज्ञान कांग्रेस	:	अक्टूबर द्वितीय/तृतीय सप्ताह
4.	राज्य स्तरीय बाल विज्ञान कांग्रेस	:	5–6 नवम्बर, जनपद नैनीताल
5.	राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस	:	27–31 दिसम्बर, 2012

मानव के परजीवी

विजय कुमार

परजीवी वह जीव होते है। जो अपने पोषण के लिए अन्य जीवो/जीव पर आश्रित रहते हैं। यह पोषद के लिए लाभदायक भी हो सकते हैं। जैसे ई कोलि मानव की आंत में पाया जाने वाला जीवाणु जो मानव शरीर से पोषण प्राप्त करता है तथा बदले में मानव को कुछ महत्वपूर्ण विटामिन उपलब्ध कराता है जो पाचन की क्रिया में सहायक होते है। लेकिन सभी परजीवी लाभदायक नहीं होते। ऐसे परजीवी रोगजनक कहलाते हैं। यह मानव शरीर से पोषण प्राप्त करते हैं तथा पोषद में रोग उत्पन्न करते हैं। मनुष्य १०० से भी ज्यादा प्रकार के परजीवियों का पोषद है जिनमें से ७०% परजीवी सूक्ष्मजीव हैं तथा ३०% परजीवियों को नग्न आँखों से देखा जा सकता है।

पोषद के शरीर पर बाहर रहने वाले परजीवी बाह्यपरजीवी कहलाते हैं जैसे – जूँ। यदि परजीवी पोषद के शरीर के भीतर रहने वाले हैं तो इन्हें अंतः परजीवी कहते हैं। इनकी तीन श्रेणियाँ होती हैं।

(अ) कोशिकीय अन्तः परजीवी – जैसे – प्लाज्मोडियम

(ब) ऊतकीय अन्त : परजीवी – जैसे – ट्रिपैनोसोमा

(स) गुहीय अन्त : परजीवी – जैसे – गिआर्डिय लैम्बलिया, टाइकोमोनैस होमिनिस

परजीवी विकल्पी हो सकते है टाइकोमोनैस होमिनिस अर्थात् वह जीव जिनमें स्वतंत्र और परजीवी दोनों ही प्रकार का जीवन व्यतीत करने की क्षमता होती है। या फिर अविकल्पी अर्थात् वह जीव जो केवल परजीवी जीवन के लिए उपयुक्त हैं। अतः **पोषद** की मृत्यु के बाद इनकी भी मृत्यु हो जाती है। परजीवी स्थाई हो सकते हैं जो सारा जीवन पोषद पर व्यतीत करते है या फिर अस्थाई जो अपने जीवन का कुछ भाग स्वतंत्र तथा कुछ परजीवी के रूप में व्यतीत करते हैं। इनके अलावा परजीवी नियतकालिक भी होते हैं जो पोषद के लिए तथा अन्य के लिए पोषद से अल्पकालीन सम्पर्क स्थापित करते हैं। कुछ परजीवी अरोगजनक होते है जो पोषद से पोषण लेते हैं लेकिन रोग उत्पन्न नहीं करते या हानि नहीं पहुँचाते। वह परजीवी जो पोषद से पोषण तो ग्रहण करते है साथ ही साथ पोषद में रोग उत्पन्न भी करते हैं इन्हें रोगजनक परजीवी कहते हैं। इनका प्रयोग हानिकारक कीटों के नियंत्रण में किया जाता है।

परजीवी जीवन के लिए अनुकूलता

परजीवी जीवन के लिए परजीवियों में सरलीकरण और विशिष्टीकरण दोनों से सम्बन्धित संरचनात्मक एवं क्रियात्मक परिवर्तन हुए जैसे –

(अ) कायिक या दैहिक अंगों एवं क्रियाओं का ह्रास

अनुकूल वातावरण सुलभ पोषण के कारण इनमें कायिक दैहिक अगों एवं क्रियाओं का अत्याधिक ह्रास हुआ जैसे –

(i) संवेदन क्षमता लगभग समाप्त हो गई

(ii) संकुचनशील रिक्तिका नही रही

(ब) अत्यधिक जनन क्षमता

एक पोषद से दूसरे पोषद तक पहुंचने की

कठिन व चुनौतीपूर्ण स्थिति से निपटने के लिए परजीवियों की जनन क्षमता आश्चर्य जनक रूप से बढ़ी ताकि वंश की निरंतरता बनी रहे।

मानव शरीर में परजीवी के प्रवेश के बाद इनके खिलाफ शरीर की प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है जिसके फलस्वरूप निम्न लक्षण विकसित हो जाते हैं।

1. कब्ज, गैस या अंगीय सूजन
2. दस्त
3. जोड़ों तथा मांसपेशियों में दर्द
4. चिड़चिड़ा आँत्र सिंड्रोम
5. भूख में वृद्धि
6. नाक, कान या गुदा में खुजली
7. घबराहट या चिड़चिड़ापन
8. क्रोनिक थकान, सुस्ती या उदासीनता
9. विभिन्न त्वचा समस्याएँ
10. दांत पीसना
11. एनीमिया
12. भुलक्कड़पन
13. निद्रा समस्याएँ
14. दृष्टि समस्याएँ

परजीवी जो नग्न आखों से देखे जा सकते है उनमें प्रमुख हैं कृषि जो आंत, परिसंचरण तंत्र, फेफड़े, जिगर, यकृत तथा अन्य अंगों को वेध कर शारीरिक आघात पहुँचाते हैं। कुछ शारीरिक अंग जैसे मस्तिष्क, हृदय, फेंफडे आदि की शिखाओं में इकट्ठा होकर इन्हें बन्द कर देते हैं जिसके कारण घातक व जान–लेवा स्थिति उत्पन्न हो जाती है। परजीवी को पोषण, पोषद से प्राप्त होता है। यह पोषद के पोषक तत्वों को ग्रहण करते हैं तथा विषैले पदार्थों का उत्सर्जन मनुष्य के शरीर में करते है जिन का पता लगाना या निदान भी सम्भव नहीं है।

इससे पहले कि हम विभिन्न परजीवियों से होने वाले संक्रमण को जानें, हम यह भी जानें कि यदि एक ही पोषद में परजीवी का जीवन वृत्त पूर्ण हो जाता है, इसे एक पोषदीय कहते हैं तथा जिनका जीवन वृत्त दो पोषद में पूरा होता है उन्हें द्विपोषदीय कहते हैं। जिन पोषदों में इन की वयस्क प्रावस्या पाई जाती है, उन्हें प्राथमिक पोषद कहते हैं तथा जिसमें अन्य प्रावस्थाएँ पाई जाती हैं उन्हें द्वितीयक पोषद कहते हैं। कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार, जिस पोषद में परजीवी लैगिक जनन करता है उसे प्राथमिक तथा दूसरे को द्वितीयक या वाहक मानना चाहिए। कुछ परजीवी इन दो के अतिरिक्त अन्य प्रकार के पोषद में भी रहते हैं। ये पोषद आरक्षण पोषद होते हैं। इनसे वाहक पोषदों की परजीवीं की संक्रमण प्रावस्थाएँ प्राप्त होती रहती हैं। मनुष्य 100 से भी ज्यादा परजीवियों द्वारा संक्रमित होता है जैसे–

(अ) प्रोटोजोआ से होने वाले संक्रमण
(ब) कृमि से होने वाले संक्रमण
(स) जीवाणुओं/विषाणुओं से होने वाले संक्रमण

(अ) प्रोटोजोआ से होने वाले संक्रमण

प्रोटोजोआ अतिसूक्ष्म जीव होते हैं। यह जल, गीली मिट्टी, सड़ी गली वस्तुओं व अन्य जीवों के शरीर में पाए जाते हैं। इनके शरीर एक ऐसी अकेली सुकेन्द्रकीय कोशिका के समान होते हैं जो स्वतंत्र जीवन विताते हैं तथा सभी प्रमुख जैव क्रियाएँ करते हैं। इनमें सामान्य कोशा के अतिरिक्त कुछ अन्य विशिष्ट रचनाएँ होती हैं जिस कारण इन्हें अकोशिकीय कहते है। मनुष्य में लगभग तीस प्रकार के प्रोटोजोआ रोग उत्पन्न करते हैं। प्रोटोजोआ परजीवियों के कारण मनुष्य में निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं –

1. गठिया, अस्थमा
2. बृहदान्त्र की सूजन
3. मासपेशियों में अपदायी रोग
4. मधुमेह, ऊँचा सफेद रक्त कोशिका गिनती
5. ल्यूकेमिया, लिंफोमा
6. मल्टीपल स्केलेरोसिस
7. डिम्बंग्रथि अल्सर
8. सोरायसिस
9. मसूडों, दांतों में सूजन
10. गूमड़ेदार घाव, जिल्द की सूजन तथा खुजली

कुछ प्रमुख प्रोटोज़ोआ जिनसे मनुष्य में संक्रमण होता है निम्नवत् है।

(क) मुख में संक्रमण करने वाले प्रोटोज़ोआ

1. ट्राइकोमोनैस टीनैक्स (एक पोषदीय) इस परजीवी के कारण पायरिया रोग होता है। जिससे दाँत व मसूड़े प्रभावित होते हैं। यह मुख्यतः सीधे चुम्बन के जरिए एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक फैलता है। इससे संक्रमित व्यक्तियों में –

1. मसूडों मे सूजन, खून बहना
2. उज्जवल लाल या बैंगनी मसूडे
3. मसूडों को छूने से दर्द तथा मुख से दुर्गन्ध आती है।

2. एन्टअमीबा जिन्जिवैलिस इनमें एक पोषदीय जीवन चक्र होता है। इसके वयस्क ट्रोफोज्वाएट्स, कुत्तों, बिल्लियों, घोडों, बन्दरों आदि के अतिरिक्त संसार के आधे से भी अधिक मनुष्यों के दाँतों की जडों तथा फूले हुए मसूडों और टान्सिल्स की पस थैलियों मे पाए जाते हैं। इनके संक्रमण से पायरिया रोग होता हे। वयस्क ट्रोफोज्वाएट्स ही संक्रामक अवस्था है क्योंकि यह एक मनुष्य से दूसरे में सीधे चुम्बन द्वारा पहुँच जाते हैं। पायरिया रोग अन्य प्रोटोजोआ जैसे ट्राइकोमोनैस टीनैक्स, जीवाणु आदि के संक्रमण से भी होता है। इस रोग से ग्रसित मनुष्य के मसूडों में सूजन, खून बहना, मसूडों को छूने से दर्द

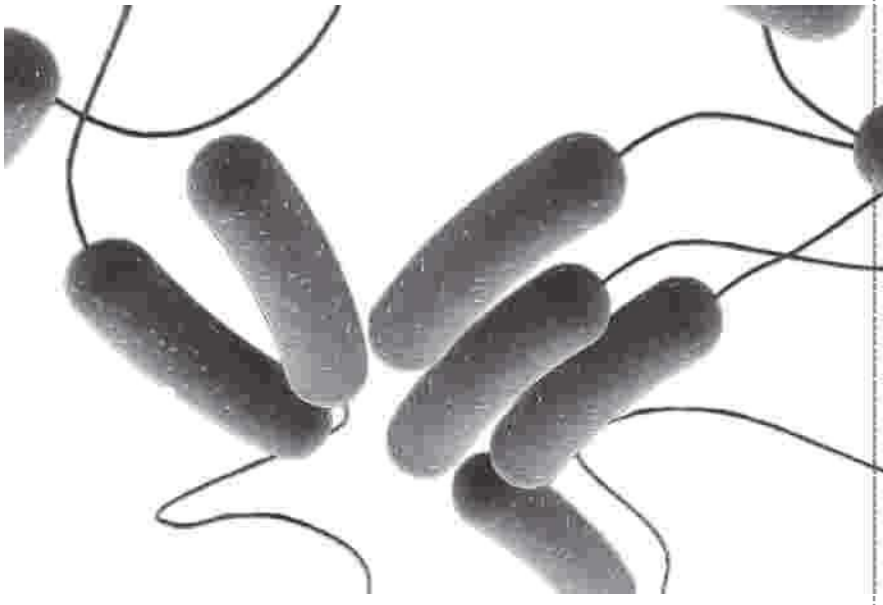

तथा मुख से बदबू आती है।

(ख) रुधिर में सक्रमण करने वाले प्रोटोज़ोआ

1. **लीशमैनिया** (द्विपोषदीय जीवन चक्र) इस प्रोटोज़ोआन परजीवी के संक्रमण से काला अज़ार नामक रोग होता है। इसकी वजह से रुधिर एवं लसिका केशिकाओं की दीवार, यकृत, प्लीहा, अस्थि मज्जा आदि प्रभावित होते हैं। यह परजीवी मनुष्य तक बालू मक्खी (वाहक) पहुँचाती है। इसके संक्रमण से मनुष्य की नाक तथा मुख के ऊतकों में घाव हो जाते हैं। बुखार, एनीमिया के साथ यकृत तथा प्लीहा को नुकसान पहुँचता है।

2. **प्लाज़्मोडियम** (द्विपोषदीय जीवन चक्र) प्लाज़्मोडियम एक रोग जनक प्रोटोजोअन परजीवी है। ऐनोफेलीज नामक मच्छर की मादाऐं प्लाज़्मोडियम की वाहक होती हैं। मनुष्य में प्लाज्मोडियम की चार जातियाँ पाई जाती हैं जो विभिन्न प्रकार के मलेरिया रोग उत्पन्न करती हैं जैसे –

1. प्लाज़्मोडियम वाइवैक्स (सबसे अधिक पाई जाने वाली जाति)
2. प्लाज़्मोडियम फैल्सीपैरम
3. प्लाज़्मोडियम मलैरी
4. प्लाज्मोडियम ओवेल

मनुष्य प्लाज़्मोडियम का प्राथमिक पोषद होता है तथा मादा ऐनोफेलीज़ द्वितीयक पोषद व वाहक पोषद होती है। मनुष्य में प्लाज़्मोडियम का अलैंगिक जनन होता है तथा मच्छर मे लैंगिक जनन एवं बीजाणु जनन होता है। प्लाज्मोडियम की वयस्क प्रावस्था को ट्रोफोज्वाएट तथा संक्रमण प्रावस्था को स्पोरोज़्वॉएट कहते हैं। सन् 1880 में लैवरान नें पता लगाया कि मलेरिया प्लाज़्मोडियम के संक्रमण से होता है। इस संक्रमण के फलस्वरूप मलेरिया बुखार, जी मिचलाना, पेशियों और जोडों में दर्द, कंपकपी, पीलिया, रक्ताल्पता, रक्तकणरंजकद्रव्यमेह, रेटीना की क्षति, तिल्ली का बढ़ जाना आदि होता है।

उपयुक्त इलाज न मिलने पर रोगी की मृत्यु हो जाती है। भारत मे इसके रोकथाम के लिए मलेरिया उन्मूलन योजना चल रही है। इसमें तीन विधियाँ अपनाई जाती है।

1. मच्छरों का संहार
2. रोग से बचाव
3. रोगियों का उपयुक्त उपचार

(ग) उदरभाग में संक्रमण करने वाले प्रोटोज़ोआ

1. **क्रिप्टोस्पोरिडियम** इस प्रोटोज़ोआ परजीवी के संक्रमण से क्रिप्टोस्पोरिडिओसिस नामक रोग होता है जिसमें परजीवी मनुष्य के उदर भाग में संक्रमण उत्पन्न करता है। यह संक्रमण अशुद्ध जल से होने वाले रोगों की श्रेणी मे आता है अर्थात् इसका संक्रमण जल के माध्यम से एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में होता है।

(घ) छोटी आँत में संक्रमण करने वाले प्रोटोज़ोआ

1. **गिआर्डिया लैम्बलिया** (एक पोषदीय जीवन चक्र) इस परजीवी का संक्रमण आँत के अगले भाग में होता है जिसके कारण अतिसार (दस्त), पीलिया, सिरदर्द जैसे लक्षण उत्पन्न होते है। लम्बे संक्रमण से आँत की अवशोषण क्षमता में कमी आ जाती है। इसकी संक्रामक अवस्था मल में उपस्थिति पुटिकाओं द्वारा फैलती है।

2. **बैलेन्टीडियम कोलाई** मनुष्य का एकपोषदीय परजीवी जो आंत के अगले भाग में पाया जाता है। इसके संक्रमण से आमातिसार नामक रोग होता है। संक्रमण एक व्यक्ति से दूसरे में, मल में उपस्थित कोष्ठीय संक्रामक प्रावस्था से फैलता है।

(ङ) बडी आंत में संक्रमण करने वाले प्रोटोज़ोआ

1. **ट्राइकोमोनैस होमिनिस** (एक पोषदीय जीवन चक्र) इस परजीवी के संक्रमण से बड़ी आंत प्रभावित होती है। इसके संक्रमण के फलस्वरूप आमातिसार नामक रोग होता है जिसके कारण दस्त, पेट दर्द, उल्टी, बुखार आदि समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

2. **एन्टअमीबा हिस्टोलिटिका** मनुष्य की बड़ी आंत (कोलन) का एक पोषदीय परजीवी। इसकी खोज लैम्बल ने सन् 1859 में की थी तथा लाश ने 1875 में इसकी रोगजनकता का पता लगाया इसके संक्रमण से पेचिश (आमातिसार) या अमीवॉयासिस नामक रोग होता है जिसमें रोगी को दस्त के साथ आंव एवं रक्त निकलता है। चौकेन्द्रकीय कोष्ठ पोषद मनुष्य के मल के साथ बाहर निकल जाते हैं। यह कोष्ठ मनुष्य के लिए संक्रामक प्रावस्था होते हैं। गरम देशों में इसका संक्रमण अपेक्षाकृत अधिक होता है।

इस परजीवी के संक्रमण से पोषद की आँत घायल हो जाती है, छोटे–छोटे नासूर बन जाते है जिनसे आँव, पस, एवं रक्त रिसता रहता है। आंत में मरोड़ एवं ऐंठन से पीड़ा होती है। वयस्क ट्रोफोज्वाएट्स यकृत, फेफड़े, मस्तिष्क आदि में पहुँचकर इन्हें भी घायल कर सकते है।

(च) जननांगों में संक्रमण करने वाले प्रोटोज़ोआ

1. **ट्राइकोमोनैस वैजाइनैलिस** (एक पोषदीय) इसे योनि का परजीवी कहते हैं। इसके कारण स्त्रियों में श्वेत प्रदर रोग होता है। इसी कारण स्त्रियों में श्वेत प्रदर रोग होता है। इसी कारण सूजाक रोग भी होती है। इसका संक्रमण पुरूषों के मूत्र मार्ग तथा स्त्रियों की योनि में होता है। इसका संक्रमण सम्भोग के जरिए फैलता है। इस संक्रमण के कारण स्त्रियों में –

1. श्वेत प्रदर (सफेद पानी का स्त्राव)
2. जननांग क्षेत्र में खुजली, जलन व लेबिया लघु भगोष्ठ में लाली
3. संभोग में दर्द
4. बेईमानी योनि गंध, उत्पन्न होती है।

(च) अन्य अंगों को प्रभावित करने वाले प्रोटोजोआ

1. **ट्रिपैनोसोमा ब्रूसी** (द्विपोषदीय) यह मनुष्य में निद्रा रोग उत्पन्न करता है। इसके कारण केन्द्रकीय तंत्रिका तंत्र तथा लसिका प्रभावित होते है। यह परजीवी सी–सी मक्खी द्वारा रात को काटने से मनुष्य में पहुँच जाता है। इस परजीवी के

संक्रमण के कारण मनुष्य में निम्न लक्षण उत्पन्न होते है।

1. प्रथम अवस्था में बुखार, सिर दर्द, खुजली, लिम्फ नोड्स की गंभीर सूजन, रक्ताल्पता, हृदय व गुर्दा रोग
2. द्वितीय अवस्था में भ्रम की स्थिति, कम समन्वय, नीदं चक्र में विदारण आदि

2. ट्रिपैनोसोमा क्रूज़ी (द्विपोषदीय) प्रोटोजोअन परजीवी जिसका प्राथमिक पोषद मनुष्य तथा वाहक व द्वितीय पोषद खत्मल होता है। इस परजीवी के संक्रमण के कारण शैगास रोग होता है। इसमें कोलोन ग्रासनली, हृदय, मांसपेशियाँ, तंत्रिका तथा रूधिर आदि प्रभावित होते है। इसका संक्रमण मनुष्य में निम्न लक्षण उत्पन्न करता है।

1. स्थानीय सूजन
2. हृदय एवं पाचन सम्बन्धी गड़बडी।
3. हृदय मांसपेशियों में सूजन।
4. खाना निगलने में परेशानी (आहार नाल के फैल जाने के कारण)।

(ब) मनुष्य के कृमि परजीवी

मनुष्य एवं अन्य जन्तुओं के शरीर में भीतर रहने वाले कृमियों से प्राचीन कालीन वैज्ञानिक – दार्शनिक परिचित थे। अधिकांश सदस्य अन्य जन्तुओं, मुख्यतः कशेरूकियों के परजीवी होते हैं। कुछ रोगोत्पादक भी होते हैं। पोषद के शरीर में भीतर या बाहर चिपके रहने के लिए इनमें चूषको, कटिकाओं का विकास हुआ। इन्हें मुख्यतः दो बड़े समूहों में वर्गीकृत किया गया है।

1. प्लैटीहेल्मिन्चीज़
चपटे–कृमि–जिनका शरीर ऊपर–नीचे अर्थात् पृष्ठ–अधर अक्ष पर चपटा होता है। जैसे–फीता कृमि, यकृत कृमि आदि।

2. निमैटहेल्मिन्थीज सूत्रकृमि या गोल कृमि – जिनका शरीर सूत्र के समान गोल होता है। मनुष्य के शरीर में इनकी लगभग 50 जातियाँ पाई जाती हैं इनमें ऐस्कैरिस लम्ब्रीक्वाएडिस, एन्टीरोबियस वर्मीकुलेरिस, अंकुश–कृमि रोग का उत्पादक ऐन्काइलोस्टोमा, वूचीरेरिया आदि।

कृमियों से होने वाले कुछ प्रमुख रोग निम्नवत् हैं।

1. फीताकृमि (टीनिया सोलियम) मनुष्य की आँत के सबसे व्यापक परजीवी होते हैं। इनका जीवन चक्र द्विपोषदीय होता है। मनुष्य इनका प्राथमिक पोषद होता है तथा सूअर द्वितीयक पोषद होता है। संक्रमण मीस्ले पोर्क (संक्रमित सूअर का माँस) खाने से होता है। इसके संक्रमण से टीनिएसिस नामक रोग हो जाता है। इसके संक्रमण में हेक्जाकैन्थ लार्वा प्रायः नेत्रों की पेशियों या मस्तिष्क मे पहुँचकर ब्लैडर वर्ग में विकसित हो जाता है। जिससे अंधापन या मस्तिष्क का क्षय, मिरगी तथा अंगघात हो जाता है। संक्रमित मनुष्य की आँत से फीता कृमि को बाहर निकालने हेतु औषाधियों का प्रयोग किया जाता है।

औषधियाँ सफल नहीं हो तो फिर फीता कृमि को आपरेशन द्वारा निकाला जाता है।

2. ऐस्कैरिस लम्ब्रीक्वाएडिस एक पोषदीय परजीवी जो स्तनियों की आँत में पाया जाता है। यह पोषद की आंत मे स्वतंत्र रहता है। ऐस्कैरिस का संक्रमण बिना धुली कच्ची सब्जियाँ खाने, गंदी मिट्टी में खेलने, खुली हुई खाद्य वस्तुओं पर मक्खियों के बैठने से हो जाता है। इनकी संख्या आँत में अधिक होने पर पेट दर्द, भूख मर जाना, अनिद्रा, दस्त, वमन, सन्निपात, घबराहट, ऐंठन आदि रोग उत्पन्न होते हैं। शिशु ऐस्कैरिस रोगी के विभिन्न अंग जैसे आँत की दीवार, फेफड़े, रुधिर कोशिकाओं आदि में भ्रमण करते है तथा इन अंगों को घायल कर देते हैं। रोगी को क्षति पहुँचाते हैं। इनके कारण शरीर में ऐंठन, कमजोरी, सूजन, दाह आदि समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है।

ऐम्ब्रियोनेटेड अण्डे मनुष्य के लिए संक्रामक होते है।

3. हुक वर्म इस परजीवी कृमि के कारण एनसाइक्लो–एटोमैसिस नामक रोग होता है। यह परजीवी फेंफडों, छोटी आँत, रुधिर आदि में संक्रमण करता है। इसका लार्वा त्वचा भेद कर शरीर में प्रवेश करता है। इसके संक्रमण से मनुष्य में निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं।

1. कुपोषित, रक्त हीनता
2. उदासीन, मानसिक रूप से धीमीगति
3. कमज़ोर, आलसी, अपच, दस्त
4. मितली के साथ पेट में दर्द

4. विप वर्ग यह कृमि बड़ी आँत, गुदा आदि अगों को प्रभावित करता है। इसका संक्रमण सूखे चावल, बीन्स तथा अन्य सूखे संक्रमित अनाज खाने से होता है। इसके संक्रमण के फलस्वरूप, पेट दर्द, दस्त, बेग (निष्प्रभावी पेशाब या खारिज करने की कोशिश), गैस, घबराहट, अनिद्रा, कमज़ोरी, वजन घटना, मलाशय तथा आतों की दीवारों को नुकसान होता है।

5. गिनी कृमि (ड्रेकनकुलस मेडिनेब्सिस) से उत्पन्न रोग को ड्रेकनकुलोसिस कहते है। यह कृमि माँसपेशियों तथा त्वचा के नीचे ऊतकों को प्रभावित करता है तथा क्षति पँहुचाता है। इसका संक्रमण जल में उपस्थित पानी पिस्सू के माध्यम से मनुष्य को होता है। इसके संक्रमण के कारण त्वचा पर छाला हो जाता है जिसमें दर्दनाक जलन के साथ कृमि बाहर निकलने का प्रयास करता है। यह द्विपोषदीय परजीवी है।

(स) जीवाणुओं तथा विषाणुओं से होने वाले रोग

18 वीं तथा 19 वीं सदियों में कई प्रकार के जीवाणुओं की खोज के बाद यह स्पष्ट हो गया कि जीवाणु पृथ्वी पर सबसे छोटे, सरल एक कोशकीय जीव होते हैं। मनुष्य तथा पशुओं में कई प्रकार के संक्रामक रोग जीवाणुओं के संक्रमण से होते हैं। जीवाणुओं से भी छोटे रोगोत्पादकों को विषाणु/वाइरस कहते हैं। मनुष्य में होने वाले घातक संक्रामक रोगों में से अनुमानत : तीन चौथाई विषाणुओं के संक्रमण से होते हैं। जैसे – चेचक, अलर्क रोग, पीतज्वर, पोलियो, छोटी माता, परिसर्प, इन्फ्लुएन्जा, मस्तिष्कशोथ, खसरा, गलसुआ, कैन्सर, जुकाम, एड्स, डेंग्यू, हीपैटाइटिस, जठरान्त्रशोथ आदि विषाणुजनित रोग हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के तत्वावधान में आधुनिक वैज्ञानिको ने मानव के विषाणुजनित कई घातक रोगों का उन्मूलन टीकाकरण तथा रसायन चिंकित्सा द्वारा किया है। एड्स तथा कैन्सर विश्वभर में तेजी से फैल रहे है। तथा इनका पूर्णत : स्थाई उपचार अभी सम्भव नहीं है।

एड्स (उपार्जित प्रतिरक्षा अपूर्णता संलक्षण) एच आई वी (मानव प्रतिरक्षा अपूर्णता वाइरस) जनित रोग है। एच आई वी उन कोशिकाओं पर हमला करता है जिनकी

कोशिकाकला पर विशेष प्रकार के ग्राही प्रोटीन के अणु होते है। इनमें मुख्यतः टी 4 लिम्फोसाइट्स हैं। यह विषाणु इन कोशाओं में प्रवेश कर इन्हें नष्ट कर देता है जिसके फलस्वरूप शरीर की प्रतिरक्षण क्षमता क्षीण हो जाती है। इसका संक्रमण निम्न करणों से फैलता है।

1. संक्रमित व्यक्ति के साथ असुरक्षित यौन सम्बन्ध
2. संक्रमित सुई के प्रयोग से
3. संक्रमित रुधिर से
4. संक्रमित माँ से उसके बच्चे को गर्भ के दौरान तथा स्तनपान के समय
5. हाथ पर सुई से टैटू गुदवाने से

क्योंकि एड्स् तथा एच आइ वी के संक्रमण का कोई इलाज नहीं है इसलिए सही जानकारी व बचाव ही एक मात्र माध्यम है। जहाँ विषाणुओं को रोगाणु/रोगजनक कहा, वहीं जीवाणु रोगजनक भी हैं और लाभदायक भी। जीवाणु मनुष्य में रहकर यदि रोग उत्पन्न करता है तो इसे रोगजनक जीवाणु कहते हैं। इनकी सूची भी काफी लम्बी है। कुछ महत्वपूर्ण जीवाणु जो मनुष्य में घातक रोग उत्पन्न करते है निम्नवत् हैं

रोग का नाम	जीवाणु का नाम	रोग के लक्षण
कोलरा	विब्रियो कोलरी	त्वचा झुर्रीदार व ठण्डी
टाइफाइड	सालमोनेला टाइफी	चमकीले लाल चकत्ते त्वचा पर, बुखार
टेटनस	क्लोस्ट्रीडियम टेटानी	मांसपेशियों मे स्थाई संकुचन के कारण जबड़े बन्द हो जाते हैं। डायफ्राम तथा इन्टरस्टल मांसपेशियों मे संकुचन के कारण मौत
ऐन्थ्रेक्स	बेसिलस एन्थ्रेसिस	त्वचा पर ज़ख्म, सिर दर्द, बुखार
गोनोरिया	बेसेरिया गोनोरोई	स्त्रियों में दर्द व जलन के साथ पेशाब पुरूषों मे श्वेत पस का लिंग से रिसाव
लेपरेसी	माइक्रोबेक्टीरियम लेपरेई	उंगलियों का मुड़ जाना, टयूमर की तरह त्वचा पर गाँठ
टी० बी०	माइक्रोबेक्टीरियम ट्यूबवर क्लोसिस	फेफड़ों में संक्रमण

इससे कोई फर्क नहीं पढ़ता की आप कौन है या क्या हैं? संक्रमण किसी को भी हो सकता है। सही जानकारी संक्रमण से आपको दूर रखेगी। अंधविश्वास ने बीते समय में भारत में असख्यों को लीला है। वैज्ञानिक युग में आज लगभग सभी प्रकार के संक्रमणों का कारण, कारक, फैलने का तरीका आदि पता लगा लिया गया है। अधिकांश का उपचार भी सम्भव है और जिन का उपचार सम्भव नहीं है उनसे भी सही एवं पूर्ण जानकारी से बचा जा सकता है। अधिकांशत : संक्रमण अशुद्ध जल, भोजन व वायु तथा हमारी गंदी आदतों के कारण होता है। अपने व्यवहार, आचरण, रहन–सहन के तरीके मे मूल आवश्यकता के अनुसार, आवश्यक परिवर्तनों द्वारा बहुत गंभीर रोगों से भी बचा जा सकता है। इससे आपके स्वास्थ्य की सुरक्षा के साथ–साथ आप के धन की भी बचत होगी। स्वस्थ समाज, स्वस्थ भविष्य, देश की नींव होते हैं। देश की उन्नति देश वासियों के स्वास्थ्य पर निर्भर करती है।

असिस्टेंट प्रोफैसर, जन्तु–विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय बिलासपुर, रामपुर

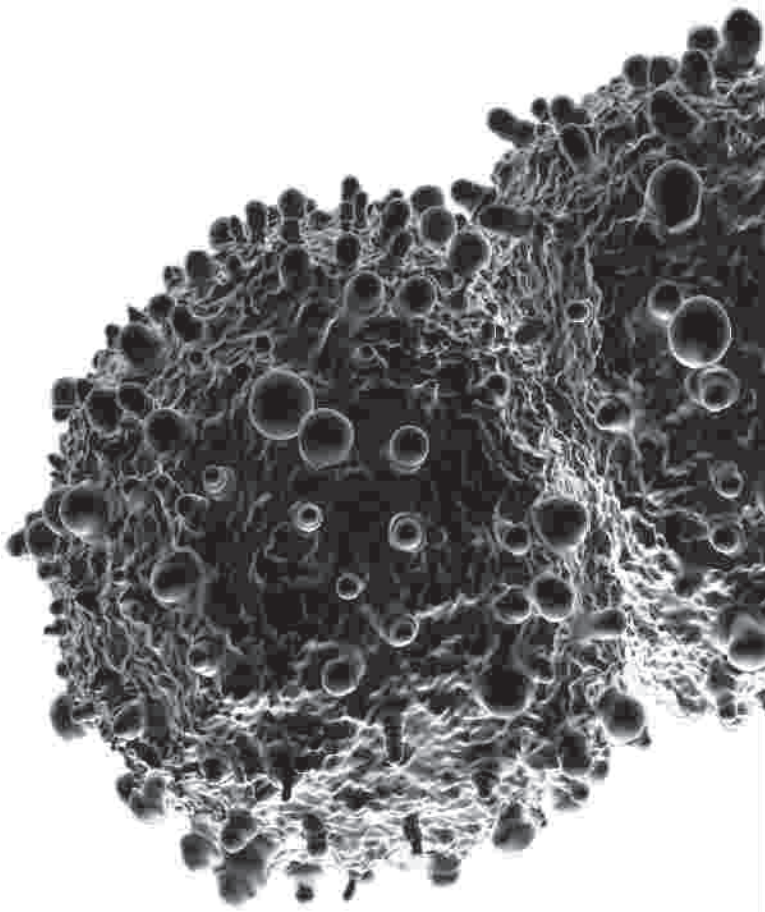

दिनेश मणि

प्राकृतिक आपदाओं के प्रबंधन में सुदूर–संवेदन

प्राकृतिक आपदाएं हमारे देश की ही नहीं अपितु सारी दुनिया की समस्याएं हैं। हमारे देश में तो ये समस्याएं बहुतायत में और नियमित हैं। यहां एक ही साथ किसी भाग में भयंकर सूखा पड़ता है तो दूसरे भाग में बाढ़ से भयंकर तबाही मची होती है और कोई स्थान भूकंप के झटकों से आक्रांत होता है। आज भी हजारों लोग प्रतिवर्ष बाढ़, भूकंप जैसी आपदाओं के कारण मरते हैं और लाखों बेघर हो जाते हैं। ये आपदाएं न केवल जन–धन सम्पत्ति को हानि पहुंचाती हैं बल्कि प्रगति की गति में रुकावट बन जाती हैं।

हमारा देश अपने भौगोलिक एवं जलवायुगत कारणों से आपदाओं की संभावनाओं से घिरा रहा है। बाढ़, सूखा, भूकंप, चक्रवात, तूफानी लहरें एवं भूस्खलन हमेशा से रहे है। भारत की भूमिका 60 प्रतिशत हिस्सा भूकंप से प्रभावित है। 8 प्रतिशत इलाका तूफानी लहरों से होने वाली तबाही की दृष्टि से खतरनाक है। कोई भी विकास योजना तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक कि आपदा न्यूनीकरण कार्यक्रम को उसमें सम्मिलित नहीं किया जाता। प्रत्येक देश की अपनी आर्थिक योजना में संभावित आपदा का भी समावेश आवश्यक है।

आपदाओं के प्रबंधन के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि मौसम और मानसून की पूर्वानुमान क्षमता में सुधार हो। विशेष रूप से हिन्द महासागर के मानसून व उष्ण कटिबंधीय चक्रवात का दीर्घावधि पूर्वानुमान भारत के लिए किसी भी प्रतिकूल प्रभावों से निपटने के लिए आकस्मिक योजना बनाने के लिए आवश्यक है। किसी भी तरह के विश्वसनीय योजनाबद्ध पुर्वानुमान के लिए सही सही समयानुसार ऊपरी महासागर और सतही मौसम वैज्ञानिक प्राचलों (पैरामीटरों) की जानकारी होनी चाहिए।

वस्तुतः समुद्र की सतह का विशिष्ट तापमान चक्रवात उत्पन्न करने का कारण होता है। ये समुद्री चक्रवाद जब तटीय क्षेत्र पर आकर टकराते हैं, तब वह तटीय क्षेत्र एक विकराल एवं भयावह दृश्य में परिवर्तित हो जाता है। हजारों की संख्या में जान माल का नुकसान होता है। अधिकांश तटीय भाग बाढ़ की चपेट में आ जाते हैं एवं संपूर्ण कार्यप्रणाली क्षतिग्रस्त हो जाती है। इसी प्रकार समुद्र तल में होने वाले बहुत बड़े भूकम्प अथवा समुद्री किनारों पर होने वाले वृहद् भूस्खलनों के फलस्वरूप समुद्री जल में दोलन प्रारम्भ हो जाता है जो कि संबंधित तटीय क्षेत्रों पर ऊँची–ऊँची समुद्री लहरों को जन्म देता है, इस प्रक्रिया को सुनामी कहते हैं। ये विशालकाय सुनामी तरगें बड़ी ही तीव्र गति से तटीय क्षेत्रों में पहुंचकर नुकसान पहुंचाती हैं। भारतीय भूखंड इसकी भौगोलिक, भूगर्भिक तथा जलवायु की विविधताओं के कारण पूर्वी तथा पश्चिमी तटों पर चक्रवात, बड़ी नदियों जैसे गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, महानदी गोदावरी, कृष्णा के कारण मैदानी तथा तटीय क्षेत्रों में बाढ़, हिमालय तथा भारतीय प्रायद्वीप में भूकंप तथा भूस्खलन और पश्चिमी मध्य तथा दक्षिणी भारत में बार–बार सूखे जैसी आपदाओं से प्रभावित होता रहता है। जनसंख्या विशिष्टतः शहरी जनसंख्या के विस्फोटक रूप से बढ़ने के कारण इन विपत्तियों का परिणाम कई गुना बढ़ जाता है। जनसंख्या का बढ़ता दबाव लोगों को अपने रोजगार के कारण विपरीत संभावित क्षेत्रों में रहने पर मजबूर करता है।

तटीय क्षेत्र प्राकृतिक तथा मानव निर्मित कारणों तथा कई चक्रवातों से होने वाली आकस्मिक प्रक्रियाओं से प्रभावित रहता है जिसके कारण लगातार इन क्षेत्रों में परिवर्तन होते रहते हैं। विश्व की आधे से अधिक जनसंख्या तट या उसके निकट फैलते और लगातार बढ़ते हुए तटीय नगरों में निवास करती है। इसके अलावा तट रेखा के निकट जीवमंडल के कई महत्वपूर्ण उत्पादक व बहुमूल्य जीव जन्तुओं व पौधों के आवास क्षेत्र होते हैं जिनमें नदियों के मुहाने, लैगून, तटीय आर्द्र भूमि तथा प्रवाल भित्तियां विशेषतः महत्वपूर्ण हैं।

तटीय आपदाओं एवं उनके उनके निवारण तथा शमन के तरीकों को समझना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि तटीय आपदाएं सभी आर्थिक क्षेत्रों को प्रभावित करती हैं जैसे पर्यटन, मत्स्य उद्योग, बंदरगाह, गृह निर्माण लोक निर्माण आदि।

आपदा निवारण तथा शमन में योजना बद्ध तरीकों से मनुष्य के स्वास्थ्य व जीवन सुरक्षा से संबंधित खतरों को कम किया जाता है। एक सुचारु आपदा प्रबंधन में निम्नलिखित अवयव सम्मिलित हैं।

उपग्रह आधारित संचार व्यवस्था :–

- भू–निरीक्षण उपग्रह
- पारम्परिक सर्वेक्षणों की जानकारी
- बहुसंस्थागत सहयोग एवं संपर्क

संचार–उपग्रहों के प्रमुख उपयोगों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं :–

- मौसम पर नजर रखना और मौसम संबंधी जानकारी को सुव्यवस्थित ढंग से कारगर रूप से संप्रेषित करना
- स्वनियंत्रित चक्रवात आपदा अविलंब चेतावनी देना
- आपातकालीन संचार व्यवस्था तथा खोज एवं अविलंब उबार कार्य
- विश्वसनीय, सशक्त, दूरभाष संचार व्यवस्था जो कि कई शहरों, गांवों तथा दूरगामी क्षेत्रों को जोड़ सके
- सुचारू रूप से आंकड़ों के हस्तांतरण के लिए कम्प्यूटरों को जोड़ने का नेटवर्क उपलब्ध करना
- 75 फीसदी से अधिक जनसंख्या को दूरदर्शन की परिधि में लाना तथा स्थानिक कार्यक्रमों को बढ़ावा देना
- अविलंब ग्रामीण संचार नेटवर्क
- रेडियो नेटवर्क

उपग्रहों पर आधारित आंकड़ों के उपयोग के प्रमुख घटक निम्नलिखित है :–

- पहचान प्रबोधन एवं पूर्वानुमान (तैयारियाँ)
- आपदा पश्चात् प्रबोधन (आपदा आने पर)
- क्षति आकलन (राहत)
- आपदा क्षेत्रीकरण (पुनर्विस्थापन, पुर्ननिर्माण, शंमन एवं निवारण)

इनमें से अधिकांश घटकों में संचार तथा भू–निरीक्षण दोनों प्रकार के उपग्रहों का उपयोग किया जाता है।

तटीय प्रक्रियाओं को समझना, तटीय खतरों को पहचानना, आशंकित क्षेत्रों को पहचानना, आशंकित क्षेत्रों के मानचित्र बनाना, स्थान के अनुरूप शमन की विधियों का विकास करना जिनमें प्राकृतिक वातावरण के संरक्षण वृद्धि तथा पुनर्विकास का विशेष ध्यान रखा गया हो तथा इन सभी के कार्यान्वित होने पर प्रबोधन करना आदि सभी तटीय आपदा प्रबंधन के लिए अति आवश्यक हैं। तटीय खतरों को समझने तथा उनके निवारण में सुदूर संवेदन तकनीक का उपयोग अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है।

सुदूर संवेदी आँकड़ों की सहायता से तटीय निम्न भूमि का भू आकृतिक निर्वचन किया जा सकता है जिससे सुनामी आपदा के संभाव्य क्षेत्रों का वर्गीकरण किया जा सकता है। काटोसेंट–I उपग्रह के विभिन्न आँकड़ों की सहायता से तटीय निम्न भूमि की समुद्र तल से उँचाई के आधार पर "रूक्षता विश्लेषण" किया जा सकता है जिससे सुनामी आपदा की स्थिति में होने वाले प्रभाव का आकलन किया जा सके।

मौसम विज्ञान उपग्रह इन्सेट एवं नोवा वी. एच.आर.आर. तथा सुदूर संवेदन उपग्रह आई.आर.एस. के आंकड़े चक्रवात के पूर्वानुमान एवं अनुश्रवण में बहुत उपयोगी हैं। विशेषकर समुद्र पर छाये बादलों को पहचानने में, जहाँ तूफानी लहरों के पूर्वानुमान, तीव्रता–निर्धारण तथा चक्रवात–पथ के अनुवर्तन के लिए अन्य कोई प्रेक्षण आंकड़े उपलब्ध नहीं होते। बादलों की गति, दिशा एवं विभिन्न स्थानों के दाबान्तर के आधार पर चक्रवात के तीव्र अथवा मंदित होने तथा स्थान विशेष पर संभाव्य प्रभाव का आँकलन किया जा सकता है।

स्पॉट एवं आई.आर.एस. आँकड़ों की उच्च विभेदन क्षमता एवं त्रिविमीय क्षमता के कारण इनका प्रयोग पूर्व भूस्खलन के मानचित्रण में किया जा सकता है। उपग्रह बिंब से मृदा, भूविज्ञान, प्रवणता, भू–आकृतिक, भू उपयोग, वर्षा, भ्रंश, जल–विज्ञान आदि से संबंधित आंकड़े एकत्र किए जा सकते हैं। कुछ विकसित देशों में भूस्खलन की चेतावनी देने के लिए प्रणाली स्थापित की गई है, किन्तु इसके लिए बहुत अधिक प्रकार के आँकड़ों, यथा–दैनिक वर्षा, पूर्ववर्ती भूस्खलन की सम्पूर्ण जानकारी इत्यादि की आवश्यकता होती है। मीडियोसेट एवं नोवा उपग्रहों द्वारा इस प्रणाली का अध्ययन किया जा रहा है। उपग्रह बिंबों के द्वारा केवल बड़े भूस्खलनों का ही सम्यक अध्ययन हो पाता है।

प्राकृतिक आपदाओं के निवारण के लिए सक्रिय भृंशों के मानचित्र में सुदूर संवेदन बहुत उपयोगी है। लेंडसेट टी.एम./स्पॉट या रडार आँकड़ों के नियोटेक्टॉनिक विश्लेषण से भ्रंश–मानचित्रण एवं उपग्रह लेजर रेंजिंग, विश्वव्यापी स्थिति दर्शन प्रणाली (जी.पी.एस) या रडार व्यतिकरणमिति से भ्रंश–विस्थापन का मापन हो सकता है।

ज्वालामुखी के पूर्व उद्भेदन के अध्ययन के लिए भूआकृतिक विश्लेषण तथा भूगर्भीय संघटन के आँकड़ों की आवश्यकता होती है। ज्वालामुखी उद्भेदन कुछ मिनटों से घंटों तक हो सकता है, किन्तु सामान्यतः उद्भेदन से पहले सक्रिय धूम्र–छिद्र भूकंप के झटके एवं विकृत सतह के रूप में साफ संकेत मिल जाते हैं। लैंडसेट टी.एम. के तापीय बैंड के द्वारा ज्वालामुखी के तापीय अभिलक्षणों का अनुश्रवण हो सकता है तथा रडार व्यतिकरणमिति के द्वारा सतह विकृति का मापन किया जा सकता है। नौवा, वी.एच.आर. आँकड़ों से लावा प्रवाह तथा राखपुंज का अनुश्रवण किया जा सकता है। मीटियोसेट, निम्बस–7 उपग्रह के आँकड़ों से ज्वालमुखी राख के बादलों एवं उनमें सल्फर डाई ऑक्साइड की मात्रा का सफलतापूर्वक अध्ययन किया गया है। लेंडसेट, टी.एम. स्पॉट या रडार आँकड़ों से ज्वालामुखी निक्षेप के प्रकार एवं

वितरण का मानचित्रण हो सकता है जिससे आपदा निवारण की तैयारी की जा सकती है।

उपग्रह के आँकड़ों को आपदा–निवारण के समय ही अनुक्रमिक आप्लावन अवस्था, आप्लावन की अवधि एवं स्तर के मानचित्रण के द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। स्पॉट, लेंडसेट आई.आर.एस. एवं नोवा उपग्रहों से प्राप्त बिम्बों के वर्गीकरण से उपर्युक्त कारकों का मानचित्रण बहुत कम समय में संभव है। इन उपग्रह बिम्बों से संभावित बाढ़–प्रभावित क्षेत्र का भू–आकृतिक मानचित्रण हो सकता है। रडार उपग्रहों की किरणे बादलों को भेदने में सक्षम हैं, अतः उनके द्वारा खराब मौसम में भी जल प्लावित क्षेत्र का मानचित्रण संभव हो सकता है। नोवा उपग्रह द्वारा एक ही बिम्ब से काफी बड़े क्षेत्र का अध्ययन किया जा सकता है। इसके आँकड़ों को रडार के आँकड़ों के साथ विश्लेषित करने पर बड़े क्षेत्र के ऊपर वर्षा की मात्रा की गणना की जा सकती है जिससे बाढ़ का सटीक पूर्वानुमान संभव हो सका है।

पूर्व सम्पादक,
विज्ञान पत्रिका, इलाहाबाद

शून्य अंक उस तत्व को कहा जाता है जो ब्रहमाण्ड को गतिमान करता है। यह शून्य अंक दर्शन, धर्म, साहित्य तथा विज्ञान तथा समाज में वृत्त, गोलक, हिरण्यगर्भ, ब्रहमाण्डीय–अंडकोश (कॉस्मिक एग) तथा चक्र (पहिया) आदि रूपों में अपने प्रतीकार्थ को व्यक्त करता है। चक्र वह रूप है जो सभ्यता के विकास में अहम भूमिका अदा करता है। वृत्त और गोलक मिथकीय आद्यरूप (ऑरिकीटाइप) के अर्थ को संकेतित करते है तथा ब्रहमाण्डीय अंडकोष विज्ञान के क्षेत्र में सृष्टि उत्पत्ति के रूप को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार शून्य अंकगणित का अंक होते हुए भी भिन्न ज्ञान–क्षेत्रों में प्रतीक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। शून्य अंक का यह एक व्यापक परिप्रेक्ष्य है।

डा० श्री प्रकाश परिमल, वैदिक सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका।

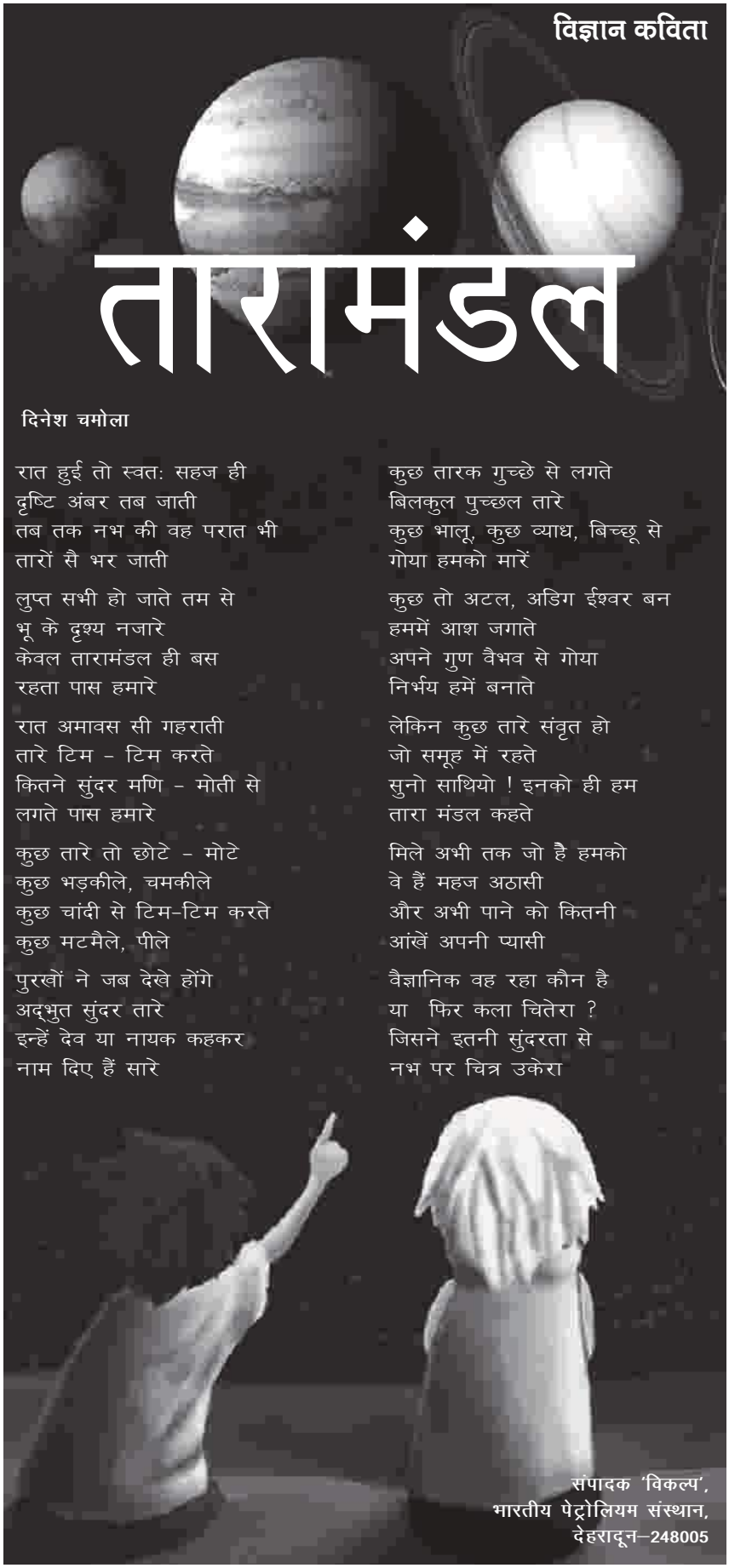

विज्ञान कविता

तारामंडल

दिनेश चमोला

रात हुई तो स्वतः सहज ही
दृष्टि अंबर तब जाती
तब तक नभ की वह परात भी
तारों सै भर जाती

लुप्त सभी हो जाते तम से
भू के दृश्य नजारे
केवल तारामंडल ही बस
रहता पास हमारे

रात अमावस सी गहराती
तारे टिम - टिम करते
कितने सुंदर मणि - मोती से
लगते पास हमारे

कुछ तारे तो छोटे - मोटे
कुछ भड़कीले, चमकीले
कुछ चांदी से टिम-टिम करते
कुछ मटमैले, पीले

पुरखों ने जब देखे होंगे
अद्भुत सुंदर तारे
इन्हें देव या नायक कहकर
नाम दिए हैं सारे

कुछ तारक गुच्छे से लगते
बिलकुल पुच्छल तारे
कुछ भालू, कुछ व्याध, बिच्छू से
गोया हमको मारें

कुछ तो अटल, अडिग ईश्वर बन
हममें आश जगाते
अपने गुण वैभव से गोया
निर्भय हमें बनाते

लेकिन कुछ तारे संवृत हो
जो समूह में रहते
सुनो साथियो ! इनको ही हम
तारा मंडल कहते

मिले अभी तक जो है हमको
वे हैं महज अठासी
और अभी पाने को कितनी
आंखें अपनी प्यासी

वैज्ञानिक वह रहा कौन है
या फिर कला चितेरा ?
जिसने इतनी सुंदरता से
नभ पर चित्र उकेरा

संपादक 'विकल्प',
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान,
देहरादून–248005

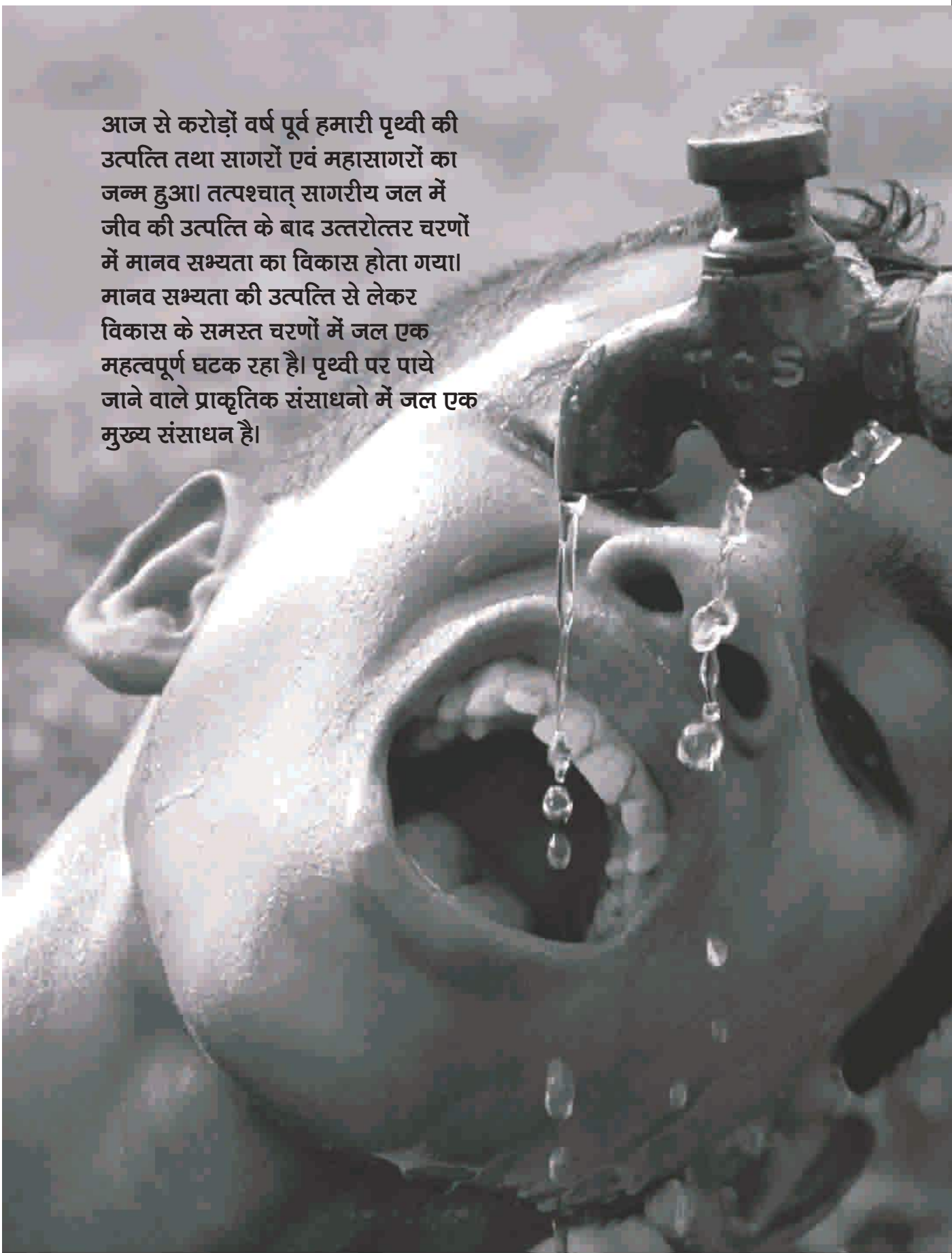

आज से करोड़ों वर्ष पूर्व हमारी पृथ्वी की उत्पत्ति तथा सागरों एवं महासागरों का जन्म हुआ। तत्पश्चात् सागरीय जल में जीव की उत्पत्ति के बाद उत्तरोत्तर चरणों में मानव सभ्यता का विकास होता गया। मानव सभ्यता की उत्पत्ति से लेकर विकास के समस्त चरणों में जल एक महत्वपूर्ण घटक रहा है। पृथ्वी पर पाये जाने वाले प्राकृतिक संसाधनो में जल एक मुख्य संसाधन है।

भवतोष शर्मा

उत्तराखण्ड के जल संसाधन एवं जनसंख्या

एक अवलोकन

पृथ्वी पर रहने वाले समस्त जीवधारियों के लिए जल जीवन का आधार है। पृथ्वी पर उपलब्ध जल की संपूर्ण मात्रा का केवल 3 प्रतिशत जल ही ताजे जल के रूप में नदियों, झीलों, हिमनदों आदि में स्थित है एवं शेष 97 प्रतिशत जल समुद्र में पाया जाने वाला खारा जल है। पृथ्वी पर मौजूद ताजे जल का 77 प्रतिशत भाग हिमनदों आदि में बर्फ के रूप में एवं 22 प्रतिशत भाग भूमिगत जल के रूप में पाया जाता है इस प्रकार मात्र 1 प्रतिशत जल ही नदी, झीलों, झरनों आदि में सतही जल के रूप में हमें प्राप्त है।

उत्तराखण्ड राज्य के जलस्रोत मुख्यतः नदियां झीलें, गदेरे, गाड, खाल, नलकूप आदि है। देवभूमि में गंगा व यमुना जैसी प्रमुख नदियां राज्य के हिमनदों से निकल कर राज्य की जनसंख्या के साथ–साथ देश के अन्य प्रदेशों की जनसंख्या को भी लाभान्वित करती हैं। अन्य नदियां यथा भागीरथी, भिलंगना, अलकनंदा, धौलीगंगा, पिन्डर, नन्दाकिनी, मन्दाकिनी, कोसी, काली, सरयू, सोंग, गोमती, शारदा, रामगंगा भी राज्य के एक बड़े भाग को लाभान्वित करती हैं। राज्य में प्राकृतिक रूप से निर्मित झीलें नैनी झील, सातताल झील, नौकुचीताल झील के साथ–साथ लगभग 118 छोटी–बड़ी झीलें/ताल राज्य के निवासियों के लिए पेयजल का मुख्य स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त राज्य में होने वाली भारी वर्षा, औसतन 1606 मि0मी0 वार्षिक, राज्य की जलसंबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम है किन्तु वर्षा द्वारा प्राप्त इस जल का लगभग 95 प्रतिशत भाग वर्षा के वेग व तीव्र ढ़लानों तथा प्राप्त वर्षा जल के उचित प्रबन्धन न हो पाने के कारण अनुपयोगी रह जाता हैं।

विगत कुछ वर्षों में उत्तराखण्ड राज्य की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार राज्य की कुल जनसंख्या 1,01,16,752 हो चुकी है जो वर्ष 2001 में 70,25,583 थी। बीते 10 वर्षों में राज्य की शहरी आबादी 25.67 प्रतिशत से बढ़कर 30.55 प्रतिशत तथा ग्रामीण आबादी

74.33 प्रतिशत से घटकर 69.45 प्रतिशत हो गयी हैं। भारतीय मानक ब्यूरो के अनुसार विभिन्न उद्देश्यों हेतु प्रति व्यक्ति प्रतिदिन जल की न्यूनतम आवश्यकता को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है:–

1. 20,000 तक की जनसंख्या वाला वर्ग (विदआउट फ्लशिंग सिस्टम)
   (a) स्टेन्ड पोस्ट द्वारा जलापूर्ति
   (b) जल संयोजन सेवा द्वारा जलापूर्ति 40 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 70–100 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन
2. 20,000–1,00,000 तक की जनसंख्या वाला वर्ग (विदफुल फ्लशिंग सिस्टम) 100–150 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन
3. 1,00,000 से अधिक जनसंख्या वाला वर्ग (विद फुल फ्लशिंग सिस्टम) 150–200 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन

राज्य की बढ़ती हुई जनसंख्या के अतिरिक्त बढ़ते हुए शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के फलस्वरूप पेयजल की गुणवत्ता में कमी आयी है। इसके

अतिरिक्त घरों में सौन्दर्य प्रसाधनों की वस्तुओं का बढ़ता प्रचलन, कृषि में कीटनाशकों का बढ़ता प्रयोग, प्रयोगशालाओं से उत्सर्जित रसायन, वाहित मल आदि राज्य के सतही जल के साथ साथ भूमिगत जल को दूषित कर शुद्ध पेयजल की मात्रा में निरन्तर ह्रास कर रहे हैं। जलवायु परिवर्तन जैसे पर्यावरणीय प्रभावों एवं छोटे–बड़े बांधों के निर्माण के फलस्वरूप वर्ष भर बहने वाली जल धाराओं व नदियों में जल की मात्रा में कमी, भूमिगत जल के स्तर में गिरावट तथा लोगों में जल के उचित प्रबन्धन के प्रति जागरूकता में कमी आदि प्रमुख कारणों की वजह से शुद्ध पेय जल की मात्रा निरन्तर घट रही हैं। इस प्रकार उपरोक्त आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि उत्तराखण्ड राज्य में शहरी जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण प्रति व्यक्ति प्रतिदिन जल की न्यूनतम आवश्यकता भी बढ़ी है किन्तु हमारा प्राकृतिक संसाधन अर्थात हमारे पास उपलब्ध जल की मात्रा सीमित हैं। अतः यहां पर यह एक अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है कि आने वाले वर्षों में हम अपनी अगली पीढ़ियों के लिए कितना जल सुरक्षित रख पायेंगे?

अतः जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण, ग्रामीण रोजगार में वृद्धि, सौन्दर्य प्रसाधनों के सीमित उपयोग, हर्बल रसायनों का प्रयोग, जैविक खाद व जैविक कीटनाशकों का प्रयोग, लोगों में जल संसाधनों के प्रति चेतना व जागरूकता, वर्ज्य पदार्थों का उचित निपटान, वर्षा जल संरक्षण आदि बिन्दुओं पर गम्भीरतापूर्वक कार्य करते हुये हम 'देवभूमि' उत्तराखण्ड के जल स्रोतों में उपलब्ध जल की गुणवत्ता एवं मात्रा को बेहतर बना सकते है और सुन्दर व स्वस्थ उत्तराखण्ड के निर्माण में सहयोग प्रदान कर राज्य को आर्थिक रूप से समृद्ध भी बना सकते हैं।

वैज्ञानिक
उत्तराखण्ड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र (यू–सर्क), देहरादून

जल, जंगल और जमीन

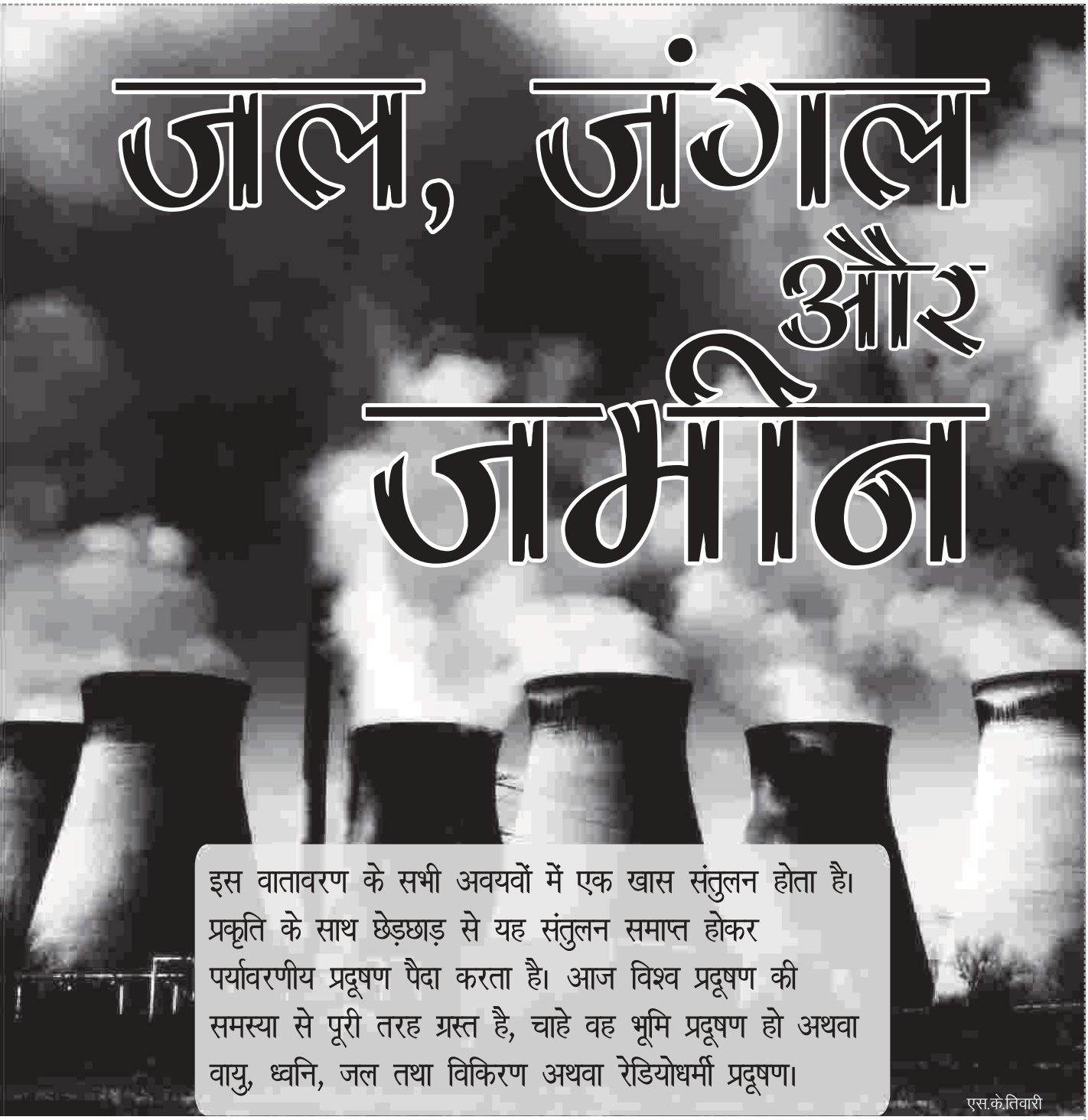

इस वातावरण के सभी अवयवों में एक खास संतुलन होता है। प्रकृति के साथ छेड़छाड़ से यह संतुलन समाप्त होकर पर्यावरणीय प्रदूषण पैदा करता है। आज विश्व प्रदूषण की समस्या से पूरी तरह ग्रस्त है, चाहे वह भूमि प्रदूषण हो अथवा वायु, ध्वनि, जल तथा विकिरण अथवा रेडियोधर्मी प्रदूषण।

एस.के.तिवारी

बीसवीं सदी के वैभव व भोगवाद को ही सुख और समृद्धि का प्रतीक माना गया। परिणामस्वरूप प्राकृतिक संपदाओं का न केवल ह्रास हुआ बल्कि निर्मम, अवैज्ञानिक दोहन से पर्यावरण को भारी क्षति पहुंची। इसीलिए इक्सीवीं सदी में प्रवेश करने के साथ ही एक गम्भीर समस्या जो बुद्धिजीवियों, समाजशास्त्रियों, पर्यावरणविदों के सामने है, वह है 'पर्यावरणीय असंतुलन'।

इस वातावरण के सभी अवयवों में एक खास संतुलन होता है। प्रकृति के साथ छेड़छाड़ से यह संतुलन समाप्त होकर पर्यावरणीय प्रदूषण पैदा करता है। आज विश्व प्रदूषण की समस्या से पूरी तरह ग्रस्त है, चाहे वह भूमि प्रदूषण हो अथवा वायु, ध्वनि, जल तथा विकिरण अथवा रेडियोधर्मी प्रदूषण। आज जल प्रदूषण चरम सीमा पर पहुँच गया है। राष्ट्रीय पर्यावरण अभियान्त्रिकी संस्थान, नागपुर के वैज्ञानिकों के अनुसार देश के उपलब्ध जल का 70 प्रतिशत भाग प्रदूषित जल की श्रेणी में आता है, जिसमें 30 प्रतिशत जल विषाक्तता के स्तर तक पहुंच चुका है। भारत में भी सबसे अधिक मौतें संक्रामक रोगों के कारण होती है, तथा इन संक्रामक रोगों के फैलने में सबसे अधिक योगदान प्रदूषित जल का है।

गुजरात में तीव्र औद्योगिकीकरण के

फलस्वरूप पानी का स्तर एक सौ मिटर नीचे चला गया है। तमिलनाडु में जलस्तर 30–40 मीटर नीचे चला गया है। राजस्थान और उ0प्र0 में भी प्रतिवर्ष भूमिगत जल एक से तीन मीटर नीचे चला जाता है। इसका एकमात्र कारण है भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन। पहले तो हमारे देश में अधिकतर सिंचाई तालाबों, पोखरों और वर्षा के जल से होती थी मगर आज 5 लाख पुराने तालाब रख–रखाव के अभाव में मिट्टी, गाद आदि भरने के कारण समाप्त हो गये हैं। जहां पचास के दशक में 2000 और वहीं साठ के दशक में 50,000 निजी नलकूप बन गए। यही सिलसिला आज भी अबाध रूप से जारी है जिससे अंधाधुंध पानी व्यर्थ बह रहा है और भूमिगत जल लगातार नीचे खिसकता जा रहा है। राजस्थान और बिहार के एक बड़े क्षेत्र में फ्लोराइड युक्त प्रदूषित जल के कारण यहां पीढ़ी दर पीढ़ी भयानक अस्थि सम्बन्धी रोगों से ग्रस्त है।

हमारे पास पूरी पृथ्वी का 27 प्रतिशत (148,951,000 वर्ग कि०मी०) भूमि है और 71 प्रतिशत (361,150,000 वर्ग कि०मी०) जलीय क्षेत्र है। परन्तु यह जल इतना लवणयुक्त और खरा है कि सिंचाई, पीने के लिए और औद्योगिक कार्यों में प्रयुक्त नहीं हो पाता। पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल का मात्र तीन प्रतिशत ही हमारे लिए उपयोगी है। इसका भी दो प्रतिशत पहाड़ों व ध्रुवों पर बर्फ के रूप में जमा है। इस प्रकार मात्र एक प्रतिशत जल ही हम कृषि कार्यों, उद्योगों एवं पेयजल के रूप में, अन्य उपयोगों में ला पाते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हमारे देश में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता 5,236 घन मीटर थी। वर्तमान में यह घटकर 2000 घनमीटर रह गई है। आबादी बढ़ने के साथ–साथ यह उपलब्धता और भी कम होती जा रही है। हमने तिगुनी जनसंख्या के साथ नई सहस्राब्दि में प्रवेश किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय का औसत जीवन 37 वर्ष से बढ़कर 65 वर्ष हो चुका है।

भूमिगत जल में प्रदूषण का एक कारण भूमि प्रदूषण भी है। लगातार भारी मात्रा में उर्वरकों के प्रयोग से मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता समाप्त हो रही है और मिट्टी कृत्रिम उर्वरक की आदी बन चुकी है। कालान्तर में यही उर्वरक रिस–रिस कर भूमिगत जल को प्रदूषित करते हैं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के एक अध्ययन के अनुसार उत्तर प्रदेश व बिहार के कुछ इलाकों में खतरनाक रेडियोधर्मी तत्व भूमिगत जल में उपस्थित हैं।

पंजाब और उत्तर प्रदेश के कई क्षेत्रों में भूमिगत जल में नाइट्रेट की मात्रा निर्धारित स्तर (1पी०पी०एम०) से कई गुना ज्यादा आंकी गई है। देश की प्रमुख झीलों का भी बुरा हाल है। कलकत्ता की प्रसिद्ध साल्ट लेक जो 80 वर्ग कि०मी० में फैली थी, आज आधी रह गई है। इसी प्रकार हैदराबाद में स्थित हुसैन सागर झील 300 कारखानों एवं 65 हजार की जनसंख्या की गंदगी व नालों के कारण प्रदूषित हो चुकी है।

इस सदी में पर्यावरण क्षति का सबसे बड़ा कारण वनों का विनाश है। उचित प्राकृतिक संतुलन के लिए मैदानी भागों में 33 प्रतिशत तथा पहाड़ी क्षेत्रों में 60 प्रतिशत पर वन होने आवश्यक है। वन क्षेत्र में सर्वाधिक कमी देश के पहाड़ी क्षेत्रों व पूर्वोत्तर भागों में आई है। चेरापूंजी जो सबसे अधिक वर्षा के लिए मशहूर है, आज वहां मात्र 25 प्रतिशत क्षेत्रफल में ही वन हैं और वहां होने वाली वर्षा की मात्रा निरंतर कम होती जा रही है। विन्ध्याचल, अरावली एवं पश्चिमी घाट की पहाड़ियों पर भी वन क्षेत्र काफी सिकुड़ रहा है। पर्यटन को बढ़ावा देने के साथ ही पवित्र हिमाचल क्षेत्र कचरे का ढेर बनता जा रहा है। इस वन विनाश का सबसे बड़ा असर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मौसम परिवर्तन, भूमिगत जल स्रोत, पर्यावरण, समुद्र व जीव–जन्तुओं पर पड़ रहा है।

पूरे विश्व में पानी की समस्या को लेकर जिस प्रकार तनाव बन रहा है उसे देखते हुए लगता है कि अगला विश्व युद्ध पानी को लेकर ही होगा। इजराइल और जोर्डन के बीच, मिस्त्र और इथियोपिया के बीच, उत्तरी अफ्रीका के कई देशों में भी पानी को लेकर आये दिन झगड़ा होता रहता है। अमेरिका में भी वर्षा का असमान वितरण होने की वजह से पानी की समस्या बनी रहती है। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश में भी पानी को लेकर वाकयुद्ध चलता रहता है। कई समझौतों के बावजूद आज तक स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। राष्ट्र तो राष्ट्र, हमारे राज्य भी जल वितरण के मुद्दे पर एक मत नहीं हैं।

जहां एक ओर सूखा पड़ रहा हैं, वहीं दूसरी ओर बाढ़ से पूरे विश्व मे एक नई समस्या ने जन्म लिया है। पहले भी बाढ़ आती थी, पर उसका क्षेत्रफल संकुचित था। बरसात में भयंकर बाढ़, भूस्खलन, हिमस्खलन, भूंकप, भू–क्षरण जैसी घटनाओं ने भी मानव को इस दिशा में सोचने को विवश किया है। एक तरफ बाढ़ से जहां धन, जन, फसल, पशु, आदि की हानि होती है, वहीं सूखे की स्थिति भी भयावह संकेत देती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वन में वृक्षों द्वारा जकड़ी मिट्टी वर्षा जल को स्थानीय जल स्रोतों तथा नदियों में धीरे–धीरे छोड़ती है। मिट्टी के बीच महीन जड़ों में तन्तुओं के जाले की वजह से जमीन में जलग्रहण क्षमता, जल विहीन मिट्टी से दस गुना तक बढ़ जाती है। इससे पानी के बहाव के साथ नदी–नालों में मिट्टी नहीं मिल पाती है और वर्ष भर पानी की आपूर्ति बनी रहती है। इन्हीं जड़ों के कारण भूरक्षण व भूस्खलन पर भी अकुंश लगता है। अब वन सरंक्षण न होने के कारण सूखे व बाढ़ का प्रकोप साथ–साथ जारी है।

सरकार को जंगल, जल व जमीन को एक साथ रखकर स्पष्ट नीति बनानी होगी। इसके साथ यह भी जरूरी है कि हिमालय के मिजाज, बदलते मौसम एवं घटते परंपरागत जलस्रोतों का भी विस्तृत वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाए। तभी आम आदमी जंगलों के प्रति जागरूक बन सकेगा और जंगलों की सुरक्षा की जा सकेगी। वर्षा के जल का उचित संरक्षण एवं उपयोग किया जाए तो पानी की समस्या का एक हद तक निदान किया जा सकता है। आवश्यकता है, एक कुशल जल नीति की व जल संरक्षण उपायों के कार्यान्वयन की।

सहायक प्रबन्धक (प्रशासन)
एस.आइ.एम.टी., काशीपुर

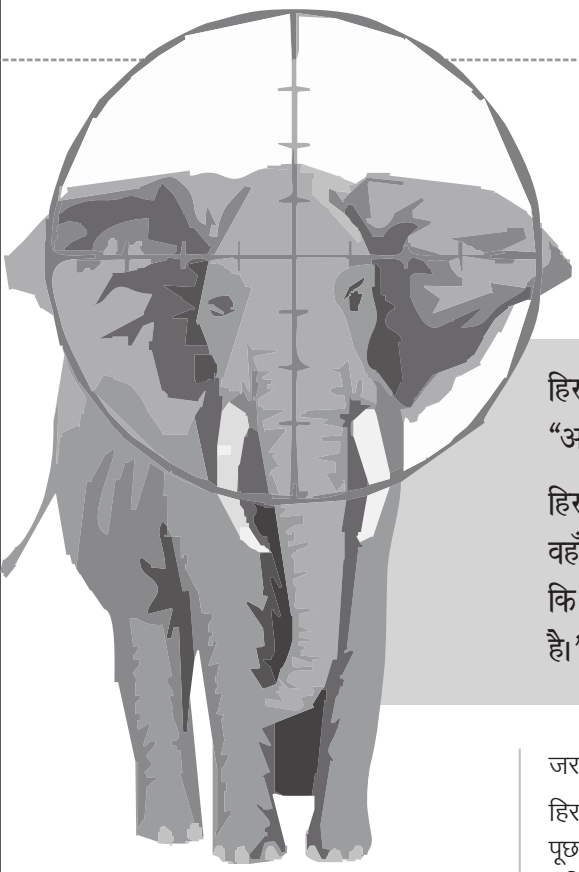

हाथियों पर बढ़ते अत्याचार

हिरण ने अपनी बात आरंभ करने से पहले ही वयोबृद्ध हिरण उठते हुये बोला "अच्छा भाई, मै चलता हूँ अपने परिजनों से मिले काफी समय हो गया है।"

हिरण और उसके शावक ने वयोबृद्ध हिरण का अभिवादन किया और उसने वहाँ से प्रस्थान किया। शावक ने फिर पूछा, "हाँ तो पापा, आप बतला रहे थे कि मानव की कुछ गतिविधियों के कारण हाथियों में गुस्सा बढ़ता ही जा रहा है।"

दिनेश चन्द्र शर्मा

हिरण ने अपनी बात फिर आरभं करते हुये कहा, "हाँ बेटा, यह तो तुम समझ ही गये हो कि हाथी एक बुद्धिमान पशु होता है। यह भी सच है कि यदि हाथियों के साथ मानवीय अत्याचार की कोई घटना होती हैं तो वे उसे लम्बी अवधि तक नही भूल पाते जबकि आजकल तो आये दिन ऐसी घटनायें होती ही रहती है। इसलिये वे अपने ऊपर हो रही ज्यादतियों को विस्मृत ही नही कर पा रहे। इसके साथ ही जंगल में मानवीय हलचल भी बढ़ रही है। इन सब बातों से हाथियों के मनोमस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है, और उनमें मनुष्यों के प्रति क्रोध और आक्रोश बढ़ता ही जा रहा है।"

तभी एक हाथी उधर से आता दिखायी पड़ा। मस्त चाल से चलता हुआ वह शानदार जानवर अपनी धुन में इसी रास्ते पर चला आ रहा था। समीप आने पर हिरण और उसके शावक ने उठकर उसका अभिवादन किया। हाथी ने सूंड उठाकर अभिवादन का उत्तर दिया और रूक कर उनकी कुशल क्षेम पूछी। हिरण ने हाथी से कहा, "हाथी दादा, अभी आपके विषय में ही बातचीत चल रही थी।"

हाथी ने पूछा, "क्या बातचीत चल रही थी, जरा हमको भी तो बतलाइये?

हिरण ने उत्तर दिया, "मेरा बेटा यह प्रश्न पूछ रहा है कि मानव की ऐसी कौन सी गतिविधियां हैं जिनके कारण हाथियों का गुस्सा बढ़ता ही जा रहा है?"

हाथी ने गंभीरता से कहा, "हूँ ... शावक का प्रश्न बड़ा उपयुक्त और सामयिक है।"

हिरण ने अनुरोध करते हुये कहा, "हाथी दादा, यद्यपि मैं शावक की जिज्ञासा शांत करने का प्रयास कर रहा था, लेकिन जब आप यहाँ आ ही गये हैं तो इस प्रश्न का उत्तर भला आप से अच्छा कौन दे सकता है। दादा, जरा बैठिये और हमें बतलाइये तो सही की इसका क्या कारण है?"

हाथी सहमत हो गया। तीनों बैठ गये। हाथी शावक के प्रश्न पर विचार कर रहा था। उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखायें स्पष्ट दिखायी पड़ रही थी। कुछ देर चुप रहकर वह गंभीर स्वर में बोला, "जैसे मनुष्य सभी जीव जन्तुओं पर अत्याचार कर रहा है वैसे ही वह हमें भी सता रहा है। हाथी दाँत के लिये हमारे परिजनों की हत्यायें की जा रही हैं। अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये हमारी जान लेकर हमारे दाँत उखाड़ना कहाँ का न्याय है?" हाथी के मुख पर दुःख और आवेश के भाव स्पष्ट दिखायी पड़ रहे थे। कुछ देर के लिए वहाँ सन्नाटा छा गया।

हिरण ने मौन तोड़ते हुये कहा, "हाँ हाथी दादा, दाँतों के लिये तो आपके परिजनों की अक्सर हत्यायें होती रहती है। आये दिन हाथी दाँत की तस्करी के समाचार मिलते रहते हैं।"

हाथी ने बात को आगे बढ़ाया, अरे हिरण भइया, अब तो हमारे हत्यारे 'साइलेंट किलिंग' का हथकण्डा अपना रहे हैं।"

हिरण ने जिज्ञासा से प्रश्न किया, "साइलेंट किलिंग'.... यह क्या होता है, हाथी दादा?"

हाथी ने समझाया, "पहले हमारे हत्यारे हमें बन्दूकों से मारते थे, इससे 'धाँय' की तीव्र ध्वनि होती थी और उनकी चोरी पकड़ी जाने की संभावना रहती थी। इसी जोखिम से बचने के लिए वे कद्दू और कटहल में इंजेक्शन से जहर भरकर उन्हें जहरीला बना रहे हैं और धोखे से हमारे भाईयों को खिला कर उनकी हत्यायें कर रहे हैं। कहीं–कहीं बिजली के तार लगा कर हमारी हत्यायें की जा रही हैं।"

हिरण और शावक का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया। दोनों बोल उठे, अच्छा तो यह है 'साइलेंट किलिंग'।

शावक ने कहा, "यह तो हत्यारों की गहरी चाल है।"

हाथी ने भी हामी भरी, "क्रूर हत्यारों की इस चाल ने तो 'वन्य जीव नियंत्रण ब्यूरों' (डब्ल्यू सी सी बी) को भी अचम्भे में डाल दिया है। उसे भी हमारे हत्यारों को पकड़ने में खासी दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है।"

तीनों चिंतामग्न होकर चुप हो गये।

अपना विज्ञान ज्ञान बढ़ाइए

प्रवासी जन्तु

वर्ष 2, (अंक 3) के 'विज्ञान परिचर्चा' अंक में न उड़ सकने वाले पक्षियों पर जानकारी देते हुए हमने पत्रिका वर्ष 1, (अंक 2) में प्रस्तुत प्रवासी पक्षियों का संदर्भ दिया था।

सामान्यतः 'प्रवासी' शब्द पक्षियों से ही जोड़कर देखा जाता है, जबकि सूक्ष्म जीवों से लेकर 'व्हेल' जैसे विशालकाय स्तनधारियों में प्रवासी स्वभाव के विचित्र उदाहरण देखने को मिलते हैं।

आइए! ऐसे कुछ विचित्र प्रवासी जीव/जन्तुओं का परिचय प्राप्त करें।

नोटः– लेख में वर्णित महत्वपूर्ण जीव/जन्तुओं के चित्रों के लिए पत्रिका कवर का अन्तिम पृष्ठ देखें।

एन. आर. आई. (NRI) अर्थात् 'नॉन रेज़िडेन्ट इंडियन' अथवा 'अप्रवासी भारतीय' ऐसे भारतीयों के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द है जो भारत भूमि को छोड़ विश्व के किसी अन्य देश के नागरिक होकर वहीं जा बसे हैं, हालांकि वे मूलतः 'प्रवासी' थे बाद मे अप्रवासी हो गए। यहाँ इस तथ्य को लिखने के पीछे कारण यह है कि 'प्रवास' नियमित अंतरालों पर होने वाली वह गमनकारी प्रक्रिया है जो भोजन अथवा प्रजनन की अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण होती है। जन्तु–जगत में 'प्रवासी' स्वभाव (Migration /Migratory behaviour) एक ऐसी सर्वव्यापी प्रक्रिया है जिसमें जन्तु निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान तैर कर, चलकर, दौड़कर या उड़कर पहुँचते हैं और पुनः अपने मूल आवासों को वापिस आ जाते हैं।

1. प्लैंक्टन अथवा प्लावक (चित्र 1)

ये वे सूक्ष्मदर्शी, छोटे–छोटे जन्तु अथवा पादप होते हैं जो स्वंय तो तैर नही पाते परन्तु समुद्र/तालाब/झील में उठने वाली तरंगों के साथ जल में उतराते रहते हैं। इनमें से बहुत से जीव दैनिक दिनचर्या के अंतर्गत जल की गहराईयों में ऊपर–नीचे गति करते रहते हैं। सामान्यतः दिन के समय ये गहराईयों में चले जाते हैं और रात्रि होने पर जल की ऊपरी सतहों में आकर एकत्र हो जाते है। इनके इस चक्र के अनुसार इनका भक्षण करने वाली मछलियॉ, पक्षी, केकड़ें आदि भी अपनी दिनचर्या निर्धारित करते हैं।

2. कृमि

केंचुए जैसे कृमियों से सम्बन्धित समुद्र में पाए जाने वाले 'नीरीस' नामक कृमियों द्वारा आवास परिवर्तन के लिए मौसम के अनुसार प्रवासी स्वभाव प्रदर्षित किया जाता है। यूरोप के तटीय क्षेत्रों में पाए जाने वाले ये 'क्लैम वर्म' (चित्र 2) के नाम से प्रसिद्ध कृमि सर्दियों के महीनों में चट्टानों की दरारों अथवा समुद्री काई (शैवाल) के बीच छिपे रहते हैं परन्तु ग्रीष्म ऋतु आने पर जल में स्वतन्त्र रूप से तैरते और प्रजनन करते हैं। प्रजनन के समय इनके शरीर के पीछे के खण्डो में अण्डे अथवा शुक्राणु भरे रहते हैं।

3. झींगा, केकड़ा समूह

बिना रीढ़ के प्राणियों में प्रजनन काल के समय बहुत से केकड़ों द्वारा 250 किमी. से भी अधिक की दूरी तय करने के प्रवासी स्वभाव के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं। आस्ट्रेलिया के समीप प्रसिद्ध 'क्रिसमस आयलैंड' पर 'जिकारक्वाईडिया' नामक थलीय 'रेड क्रैब' (लाल केकड़े) (चित्र 3) रहते हैं जो अक्टूबर–नवम्बर के बरसाती मौसम के समय घने जंगलो से निकल कर प्रजनन के लिए तटीय क्षेत्रों की ओर जाने लगते हैं। प्रवास की चरम सीमा पर इनके विशाल संख्या में सड़कों पर निकल आने के कारण यातायात बन्द कर देना होता है (चित्र 3) तथा इससे सम्बन्धित सूचनाओं को नोटिस बोर्ड तथा रेडियो के माध्यम से प्रसारित किया जाता है। प्रवास के इस क्रम में नर सबसे आगे होते हैं तत्पश्चात् मादाओं का झुण्ड

एकत्र होता है। इस यात्रा के समय शरीर में नमी की कमी को पूर्ण करने के लिए ये केकड़े समुद्र में डुबकी लगाते हैं और फिर प्रजनन के लिए सुरंगें बनाने में व्यस्त हो जाते हैं। सामान्यतः सुरंगों का घनत्व 1 या 2 प्रति वर्ग मीटर होता है। प्रजनन के पश्चात् नर पुनः जल में डुबकी लगाते है और थल की ओर वापस आना प्रारम्भ कर देते हैं परन्तु मादाएँ नम सुरंगों में 12–13 दिन तक रहती हैं जहॉ पर वे 1,00,000 तक अण्डे देती हैं। ये अण्डे उनके उदरभाग में चिपके रहते हैं। अब मादाएँ अधिक संख्या में तटीय क्षेत्रों से निकलकर छायादार क्षेत्रों में आ जाती हैं। उच्च ज्वार–भाटा के समय जब अण्डे समुद्री जल के संपर्क में आते हैं तो उनमें से लार्वा निकल आते है। इतनी अधिक संख्या में लार्वों पर अन्य मछलियों को भक्षण करने का अच्छा अवसर मिल जाता है। समुद्र में लगभग 1 माह रहने के पश्चात् 5 मिमी. माप के शिशु केकड़े पुनः टापू की ओर वापस आने लगते है। लगभग 9 दिनों की यात्रा कर ये शिशु घने जंगलो के कूड़े–करकट अथवा चट्टानों की दरारों में छिप जाते है जहाँ पर वे सड़ी–गली पत्तियों, पुष्पों और स्वंय अपने ही जाति के केकड़ो का भक्षण (कैनीबैलिज़्म) करते है। एक सर्वेक्षण के अनुसार व्यस्क लाल केकड़े प्रतिवर्ग मीटर 0.09–0.57 (कुल जंनसख्या लगभग 43.7 मिलियन) की दर से क्रिसमस टापू पर पाए जाते हैं।

4. मोनार्क तितली

उत्तरी अमेरिका में 'रॉकी माऊँटेन' के पूर्व में पाई जाने वाली 'डेनस प्लैक्सीपस' नामक 'मोनार्क तितली' (चित्र 4) मध्य मेक्सिको की ओर तथा वे जो 'रॉकीज़' के पश्चिम में पाई जाती हैं, कैलिफोरनिया तट की ओर प्रवास करने का एक उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

अमेरिका के शीत वातावरण से बचने के लिए यह प्रवास प्रतिवर्ष अक्टूबर के समय प्रारम्भ होता है। ऐसा अनुभव किया गया कि प्रतिवर्ष ये तितलियाँ एक ही वृक्ष तथा एक ही स्थान की ओर जाकर शीत निष्क्रियता अवस्था (हाइबरनेशन) में रहती है। ये केवल एक मात्र ऐसे कीट हैं जो लगभग 17,500 किमी. की दूरी तय करते है। पेड़ों पर झुण्ड बनाकर ये सुरक्षित स्थानों पर रहते हैं और बसन्त ऋतु आने पर पुनः उत्तरी प्रजनन क्षेत्र की ओर अग्रसर हो जाते हैं।

5. मछलियाँ

वैसे तो बहुत सी मछलियाँ प्रजनन अथवा पोषण के लिए वार्षिक गमन करती दिखाई देती हैं परन्तु कुछ मछलियॉ वास्तविक प्रवासी होती है जो नदी से समुद्र की ओर, समुद्र से नदी की ओर अथवा समुद्र में ही लम्बी दूरी की यात्रा नियमित रूप से करती रहती है। इन विभिन्न प्रकार के स्वभावों को तकनीकी भाषा में क्रमशः **'कैटाड्रोमस'** (नदी से समुद्र की ओर), **'ऐनाड्रोमस'** (समुद्र से नदी की ओर) तथा **'ओसिऐनोड्रोमस'** (समुद्र में ही) कहते है।

'कैटाड्रोमस' वर्ग में *'ऐंग्यूला'* नामक उत्तरी अमेरिका *(ऐ0 रॉस्ट्रेटा)* तथा यूरोप *(ऐ0 ऐंग्यूला)* में पाई जाने वाली सर्प समान (ईल) मछलियाँ उत्तम उदाहरण हैं। शरद ऋतु के आगमन पर इन मछलियों का रंग पीले से धातुई चाँदी जैसा हो जाता है, पोषण बन्द हो जाता है, आँखें बड़ी तथा थूथन नुकीला हो जाता है और जनद परिपक्व हो जाते हैं। चमकीले रंग की ये **'सिल्वर–ईलें'** समुद्र मे प्रवेश करती हैं और यूरोप से पश्चिम की ओर अथवा अमेरिका से पूर्व की ओर लगभग 4,500 किमी. की यात्रा कर बरम्यूडा तट के समीप **सारगासो समुद्र** में पहुँच जाती हैं जहाँ ये प्रजनन करती हैं। अण्डो से निकलने वाले लार्वे पत्तीनुमा एवं काँच के समान पारदर्शी होते हैं जिन्हें *'लेप्टोसिफेलस'* कहते है। 6 मिमी. लम्बे ये लार्वा (डिम्भ) समुद्र से पुनः अपने मूल आवासों की ओर यात्रा प्रारम्भ कर देते है जहॉ इसी मध्य ये लगभग 8 सेमी. लम्बे *'एल्वर'* अथवा *'ग्लास–ईल'* (चित्र 5) में परिवर्तित हो जाते है। इस प्रक्रिया में तटों के समीप आने पर नर तो खाड़ी जल मे ही रूक जाते है जबकि मादाएँ स्वच्छ जलीय नदियों की ओर बढ़ जाती है। नदियों मे परिपक्व होने पर अगले वर्ष फिर यही क्रम दोहराया जाता है।

'ऐनाड्रोमस' मछलियों में प्रशान्त तथा अटलांटिक महासागर में पाए जाने वाली **'एटलांटिक सामन'** *(सामो सेलार)*

(चित्र 6) व 'पैसिफिक सामन' *(ऑकोरिंकस)* (चित्र 7) की लगभग कम से कम 5 प्रजातियाँ समुद्र में रहती है परन्तु शरद ऋतु आने पर पहाड़ी क्षेत्रों के स्वच्छ जलीय स्त्रोतों की ओर गमन करने लगती है। वर्ष दर वर्ष ये मछलियाँ एक निश्चित पथ से होती हुई (सम्भवतः अपनी प्रबल घ्राण–शक्ति के कारण) अपने जन्म स्थान की ओर निकल पड़ती हैं जहाँ ये नदियों के तल पर कंकड़–पत्थर की सहायता से कटोरेनुमा गढ़ढ़े बनाती हैं जिनमें नर व मादा प्रजनन करते है। प्रजनन के इस काल में सभी **'सामन'** जातियों के रंग चटकीले व भड़कीले तो हो ही जाते है, विशेषतः नरों को उनके 'हुक–समान' निचले जबड़ों के कारण पहचाना जा सकता है। एटलांटिक सामन के शिशु नदियों मे 2 से 6 वर्षों तक रह सकते हैं परन्तु पैसिफिक सामन के शिशु पहले वर्ष में ही समुद्र की ओर लौट जाते हैं। समुद्र में वयस्क मछलियॉ 2 से 3 शरद ऋतुओं तक रहकर पुनः नदियों की ओर गमन क्रिया को दोहराती है। विचित्र बात यह है कि प्रजनन के पश्चात् अधिकाँशतः वयस्कों की मृत्यु हो जाती है और शिशु ही वापस समुद्र की ओर और वयस्क होने पर समुद्र से नदी की ओर गमन करते हैं। वैज्ञानिकों ने यात्रा के एक निर्धारित पथ से होकर ही गमन करने की पहेली को हल करने का

प्रयास किया जिसमें एक विशेष प्रकार की गंध व विशिष्ट तापक्रम सीमा उनके गमन पथ को निर्धारित करते पाए गए हैं।

'ओसियानोड्रोमस' प्रकार का गमन विश्व के सभी सागरों मे विस्तृत रूप से पाया जाता है जिनके 2 प्रमुख उदाहरण **'हेरिंग'** *(क्लूपिआ हेरेंगस)* (चित्र 8) व **'कॉड़'** *(गैडस मोरहुआ)* (चित्र 9) नामक मछलियाँ है। उत्तरी समुद्र (नार्थ–सी) में हेरिंग मछलियों की स्थानीय प्रजातियाँ होती हैं जिनके प्रजनन स्वभाव अलग–अलग होते हैं। उदाहरण के लिए 'ब्यूकैन हेरिंग' स्कॉटलैंड के तटीय क्षेत्रों में अगस्त व सितम्बर माह में प्रजनन करती हैं तथा दक्षिण–पश्चिम नार्वे तट की ओर प्रवास करती हैं । 'डॉगर बैंक–हेरिंग' नार्थ सी के मध्य भाग में सितम्बर व अक्टूबर में स्पॉनिंग करती हैं, तत्पश्चात् डेनमार्क व नार्वे के बीच स्थित 'स्काजेरॉक' स्थान की ओर गमन कर जाती है। हेरिंग द्वारा पत्थरों व बालू के कणों पर चिपकने वाले अण्डे, 40–200 मीटर की गहराइयों पर दिए जाते है। लगभग 2 सप्ताह के भीतर अण्डों से निकलने वाले लार्वे (डिम्भ) 3–6 महीनों तक इसी अवस्था मे रहते है और जल धाराओं के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पहुँचा दिये जाते हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि समुद्र में जल धाराओं का एक विशिष्ट दैनिक व वार्षिक क्रम होता है जिसके द्वारा गमन में सुविधा होती है।

हेरिंग के बाद नामक **'कॉड'** *(गैडस)* मछली एक ऐसी मछली है जिसे **'द बीफ ऑफ द सी'** (समुद्री मवेशी माँस) कहते है। (कॉड लीवर ऑयल नामक औषधी से शायद सभी परिचित हैं) 'न्यू फाउण्ड लैण्ड' क्षेत्र में फरवरी से जून तक स्पॉनिंग होती है परन्तु समुद्र के अलग–अलग क्षेत्रों में प्रजनन का समय भिन्न होता है। उदाहरण के लिए नार्थ सी मे अक्टूबर तथा नवम्बर के मध्य स्पॉनिंग होती है। हेरिंग के समान ही समुद्र की गहराईयों में इनका प्रजनन होता है।

6. समुद्री कछुए

हिन्दी भाषा में 'कछुआ' एक शब्द ऐसे विशेष प्रकार के सरीसृपों की ओर इंगित

करता है जिनका शरीर एक दृढ़ खोल में बन्द रहता है जिसके भीतर ये अपनी लम्बी गर्दन, छोटी पूँछ व पैरों को समेट कर सुरक्षित हो जाते है। हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में 'समुद्र मंथन' की कहानी शायद सभी को ज्ञात होगी। समुद्र–मंथन के समय जब मंद्राचल पर्वत के डूबने की आशंका हुई तो विष्णु भगवान का दूसरा अवतार **'कुर्मा'** एक कछुए का स्वरूप ही था जिसकी पीठ पर मंद्राचल पर्वत को टिका कर समुद्र मंथन का कार्य किया गया। शायद यह कथा कछुए की पीठ की दृढ़ता की सीमा को दर्शाती है।

अंग्रेजी में कछुओं के लिए 3 शब्द हैं– **टर्टल, टॉरटवायज़** तथा **टेरापिन**। टर्टल शब्द का प्रयोग जलीय अथवा अर्ध–जलीय कछुओं के लिए, **टॉरटवायज़** का थलीय जबकि **टेरापिन** का स्वच्छ जलीय जातियों के कछुओं के लिए, प्रयोग किया जाता है।

जहाँ तक प्रवासी कछुओं का प्रश्न है, **'हरे कछुए'** (ग्रीन टर्टल, *चिलोनिआ मिडास)* (चित्र 10) जो बंगाल की खाड़ी, एटलांटिक समुद्र में एसेंशन टापू, कोस्टा रिका, सुरीनाम तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में वर्जिन टापू, दक्षिण व उत्तरी कैरोलिना, लोरिडा, हवाई आदि स्थानों पर पाए जाते हैं, 2300 किमी. दूर ब्राजील के तटों तक प्रवासी यात्रा करते पाए गए है। ये कछुए (1.2 मीटर, 198 किलोग्राम) सामान्यतः कोरल रीफ, लैगून, खाड़ी जैसे समुद्री छिछले क्षेत्रों में पाए जाते है जहाँ से वे लम्बी दूरी तय कर अण्डे देने चले जाते हैं। यह कार्य प्रतिवर्ष जून से सितम्बर के मध्य, 2 से 4 वर्षों के अंतराल पर रात्रि मे प्रारम्भ होता है। 20 से 50 वर्ष की आयु पर लैगिंक परिपक्वता प्राप्त करने के पश्चात् लम्बी दूरी तक प्रवास करने वाली मादाएँ 1 बार मे 75–200 अण्डे देती हैं और एक अनुमान के अनुसार 13 दिन के अंतराल पर यह क्रम 9 बार तक दोहराया जा सकता है। 45–75 दिन के पश्चात् समुद्र के किनारे दिए गए अण्डों से जो शिशु कछुए निकलते हैं वे अपने मूल आवासों की ओर 24–36 घण्टे लगातार तैरते हुए वापिस आना प्रारम्भ हो जाते है। प्रवास के समय दिशा निर्धारण के लिए चंद्रमा के प्रकाश, धरती के चुम्बकत्व क्षेत्र व जन्मजात नैसर्गिक स्वभाव की सहायता ली जाती है।

7. समुद्री स्तनधारी

मनुष्य व अन्य स्तनधारियों जैसे ही बच्चों को जन्म देने वाले और दूध पिलाने वाले, मछली–समान आकृति के विशालकाय समुद्री स्तनधारियों में **'व्हेल'** (चित्र 11) तथा **'डाल्फिन'** के नाम प्रमुख है। इनके आगे के पैर समुद्र में तैरने के लिए चप्पू–समान परन्तु पिछले पैर अनुपस्थित होते हैं। आँखें छोटी होती है तथा नाक के छिद्र सिर पर काफी पीछे ऊपर की ओर स्थित होते हैं जिनसे समय–समय पर यह वायु को बाहर निकालते रहते है। इस क्रिया के फलस्वरूप जगह–जगह समुद्र में ऊँचे फव्वारे से निकलते दिखाई देते हैं। इनकी त्वचा के नीचे चर्बी की बहुत मोटी **'ब्लबर'** नामक पर्त होती है जो ऊष्मारोधी पर्त का कार्य करती है।

व्हेल निश्चित रूप से एक विशालतम जन्तु हैं और इनकी प्रमुख रूप से **पाँच जातियाँ** उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक

गहरे समुद्रों मे पाई जाती है :

- **ब्लू व्हेल** (*बेलीनोप्टेरा,* 30 मीटर, 180 टन) ।
- **स्पर्म व्हेल** (*फाईसीटर,* 20.5 मीटर, 56 टन) ।
- **ग्रीन–लैंड राइट व्हेल** (*बैलेना,* 20 मीटर, 75 टन) ।
- **हम्प बैक व्हेल** (*मेगाप्टेरा,* 12–15 मीटर, 36 टन) ।
- **किलर व्हेल** (*ऑरसीनस,* 6–9 मीटर, 9 टन) ।

'हम्प बैक व्हेल' उच्च कोटि की प्रवासी जाति है जिसकी 5 स्पष्ट जनसंख्याएँ दक्षिणी ध्रुव पर पाई गई हैं। प्रतिवर्ष लगभग 1200 व्हेल दक्षिणी ध्रुव (एंटार्क्टिक) से 5000 किमी. की यात्रा कर पश्चिमी व पूर्वी आस्ट्रेलिया के तटीय क्षेत्रों की ओर जाती है। व्हेल के समूह ('पॉड', 'pods') मध्य जून के समय आस्ट्रेलिया की **'ग्रेट बैरियर रीफ'** तक पहुँचने लगती हैं। दक्षिणी ध्रुव की शरद प्रारम्भ होने पर ये व्हेलें औसतन 2,500 किमी. की यात्रा अपने ऊष्णकटिबन्धीय प्रजनन क्षेत्रों की ओर करते है। इन समतापी (गर्म रक्त वाले) जन्तुओं के लिए शरद ऋतु में एन्टाकर्टिक पर भोजन की मात्रा अत्यधिक कम हो जाती है इसलिए ये व्हेल प्रवास के लिए ऊष्णकटिबन्ध क्षेत्रों की ओर 5–14 किमी./घंटा व 700 किमी./माह की दर से पहुँचते हैं जहाँ प्रजनन के पश्चात् वे शिशुओं को जन्म देते है और ग्रीष्म ऋतु आने पर ठण्डे ध्रुवीय जल की ओर वापिस भोजन करने के लिए पहुँचने लगते है क्योंकि बच्चों मे चर्बी की मोटी पर्त (ब्लबर) नहीं होती इसलिए मादाएँ उनके पोषण के लिए 600 लीटर प्रतिदिन की दर से पौष्टिक दुग्ध का उत्पादन करती है। वापस दक्षिणी ध्रुव की ओर आते समय शिशु व्हेलें मादाओं के पीछे रहती है जिस कारण उन्हें तैरने में अधिक ऊर्जा नही खर्च करनी पड़ती।

8. उड़ने वाले स्तनधारी

जन्तुओं के हवा में उड़ने के उदाहरण सर्वप्रथम हमें कीटों (तितली, मक्खी, मच्छर आदि) में मिलते हैं परन्तु ऐसे अनुकूलनों के उदाहरण उड़ने वाली मछलियों (हवा में कुछ दूरी तक छलांग लगाने वाली), मेंढ़कों, छिपकलियों, पक्षियों में तो पाए ही जाते है, वरन् उच्च वर्ग के स्तनधारियों में हवा में उड़ान भरने वाले **ऑपोसम, लेमर, गिलहरी** तथा **चमगादड़ों** (चित्र 12) जैसे विचित्र उदाहरण भी मिलते है।

जहाँ तक चमगादड़ों का पश्न है, ये प्रमुख रूप से छोटे (कीट–भक्षी) व बड़े (फलाहारी) दो प्रकार के होते हैं। **'वैम्पायर बैट'** *(डेस्मोसम)* ऐसे विचित्र तीसरे प्रकार के वृक्षाश्रीय चमगाादड़ हैं जो खून चूसने वाले स्वभाव के लिए

प्रसिद्ध हैं। इनके दाँत इतने तेज़ धारदार होते हैं कि वे उड़कर सोते हुए जानवरों के शरीर में घाव बना देते हैं और निकलने वाले रक्त को समय – समय पर आकर चाटते रहते हैं। सबसे विचित्र तथ्य इन रात्रिचर जन्तुओं के बारे में यह है कि इनमें **'राडार'** के समान एक ऐसा ध्वनि उपकरण अत्यधिक विकसित होता है जिसे ये अंधेरे में उड़ते समय रास्ता ढूढ़ने में उपयोग करते है। इस विशेषता को **'ईकोलोकेशन'** (प्रतिध्वनि–स्थिति आभास) कहते हैं। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत ये अपने वाक–कोष (वोकल चैम्बर) से ऐसी **'अल्ट्रासोनिक' ध्वनि–तरंगे** (ऐसी पराश्रवण तरंगें जो मानव कर्णों को सुनाई नही देती) उत्पन्न की जाती हैं जो रास्ते में पड़ने वाले किसी भी प्रकार के अवरोधों से टकराकर वापस इनके कानों तक आती हैं और उसी आधार पर ये अपने पथ पर अग्रसर होते रहते है।

ऊष्ठकटिबन्धीय क्षेत्रों (भारत व अन्य पुरानी दुनिया के देश) में **'फ्लाईंग फाक्स'** नाम से प्रसिद्ध सबसे बड़े चमगादड़ों (लम्बाई 30 सेमी. व पंख प्रसार 1.5 मीटर) में फलों के पकने के मौसमों के अनुसार नियमित रूप सें सामूहिक गमन होता रहता है। इसके अतिरिक्त जर्मनी में पाए जाने वाले विशाल 'चूहों जैसे कानों वाले चमगादड़' *(मायोटिस)* मार्च–अप्रैल में 'ब्रेंडेनबर्ग' के अपने शीत आवास छोड़कर लगभग 260 किमी. दूर उत्तरी जर्मनी के ग्रीष्म आवासों की ओर चले जाते हैं। इसी प्रकार लम्बी अँगुलियों वाले चमगादड़ *(मिनीआप्टेरस)* भी शीत ऋतु में लगभग 160 किमी. दूर प्रवास के लिए चले जाते है। स्पष्ट है कि ये सभी गमन रात्रि के समय होते है।

9. थलीय स्तनधारी

समुद्री तथा उड़ने वाले स्तनधारियों की तुलना में थलीय स्तनधारियों में मौसमी प्रवास के वास्तविक उदाहरण अधिकाँशतः दो खुर वाले स्तनधारियों मे मिलते है जिनमें **हिरन प्रजाति, जंगली भैसों (बाइसन), हाथी, एन्टीलोप** आदि प्रमुख है।

- उत्तरी अमेरिका के ध्रुवीय क्षेत्रों में **'कैरीबो'** *(रेंजीफर)* (चित्र 13)

नामक विशालकाय हिरनों के दो अलग–अलग झुण्ड, **पॉरक्यूपाईन हर्ड** (1,52,000) व **सेन्ट्रल आकर्टिक हर्ड** (23,400) पाए जाते है। इन हिरनों का प्रवास मार्च में प्रारम्भ होता है और 3 भिन्न दिशाओं मे होता है। गर्भवती परिपक्व व अन्य मादाएँ पहले तथा उनके पश्चात् नर प्रवास प्रारम्भ करते है। मध्य मई तक वे 'नार्थ स्लोप' की ओर पहुँच जाते हैं। तटीय मैदानी क्षेत्रों में मई–जून के समय शिशुओं का जन्म होता है। ये प्रवासी **कैरीबो** काफी लम्बे समय तक नार्थन स्लोप तथा कनाडा के समीपस्थ क्षेत्रों में रहकर फरवरी माह के अन्त तक पुनः उत्तर की ओर गमन करते हैं।

- अमेरिका में ही शीत ऋतु प्रारम्भ होने पर लगभग 40,00,000 **'बाइसन'** (जंगली भैंसे) (चित्र 14) के विशाल समूह उत्तर से दक्षिण की ओर तथा पुनः बसन्त की वर्षा ऋतु आने पर उत्तर की ओर वापस आ जाते है। ये भैंसे लगभग वृत्ताकार पथ से होकर 3.5 किमी. /दिन की दर 350–650 किमी. दूर चले जाते है।
- विशालकाय जन्तुओं की श्रेणी में स्थान रखने वाले एशियाई हाथी (3 मीटर, 6 टन, कान छोटे, माथा ऊँचा गुम्बदाकार, सूँड के सिरे पर केवल एक लिप, केवल नर में ही 2 मीटर तक के हाथीदाँत) व अफ्रीका मूल के हाथी (3.45 मीटर, 7 टन, कान बड़े व कन्धों तक फैले, माथा नीचा व चपटा, सूँड के सिरे पर दो अँगुलीनुमा प्रवर्ध, हाथीदाँत दोनों ही लिंगों में परन्तु नर में (3.5 मीटर तक लम्बे) वार्षिक स्तर पर प्रवासी स्वभाव को दर्शाते है। अफ्रीका के लम्बे शुष्क मौसम में वहाँ के हाथी लगभग 100 किमी. से अधिक दूरी तक तथा एशिया मूल के हाथी 20–50 किमी. दूरी तक भोजन व जल स्त्रोतों की खोज में प्रवास कर जाते हैं (चित्र 15)।
- पश्चिमी एवं मध्य उत्तरी अमेरिका में हिरन जैसे बड़े **'प्रौंग–हॉर्न एन्टीलोप'** *(एन्टीलोकैपरा)* (चित्र 16) पाए जाते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि दो खुर वाले बैल, भैंस, बकरी, एन्टीलोप (नील गाय जैसे), हिरन, जिराफ, गैंडे जैसे स्तनधारियों में माथे पर सींग की उपस्थिति उन्हें विचित्र बनाती है।

गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि के सींग वास्तविक एवं खोखले होते हैं और जीवन पर्यन्त बने रहते है। एन्टीलोप के सींगों को **'प्रौंग हॉर्न'** तथा हिरनों के सींगों को **'एन्टलर'** कहते है। दोनो प्रकार की सींग शाखित होते हैं एवम् उनके भीतर आधार पर ठोस हड्डी का उभार होता है परन्तु **एन्टीलोपस** के नर व मादा दोनों मे **'प्रौंग हॉर्न'** (30 सेमी.) होते हैं और कभी भी गिरते नही जबकि **हिरनो** के **'एन्टलर'** शाखित तो होते हैं परन्तु केवल नरों में पाए जाते है और शरद ऋतु आने पर गिर जाते हैं जिसके स्थान पर फिर नए एन्टलर विकसित हो जाते है। **जिराफ** के सींग दोनों लिंगों

में, अशाखित, ढूँठनुमा व रोंयेदार खाल से ढ़के होते है। **'गैंडों'** *(राइनोसेरॉस)* के सींग नाक की हड्डियों पर विकसित कठोर बालों के चिपक जाने से बनते हैं। भारतीय गैंडे में एक जबकि अफ्रीका के गैंड़ों मे दो ऐसे **'हेयर हॉर्न'** पाए जाते है।

अमेरिका के 'प्रौंग हॉर्न एन्टीलोप' का गमन/प्रवास इतिहास 6,000 वर्षों से भी अधिक पुराना है। ये एन्टीलोप 'रेड डेज़र्ट' नामक स्थान पर शरद ऋतु तथा लगभग 200 किमी. दूर 'ग्रैंड टेटौन राष्ट्रीय उद्यान' में ग्रीष्म ऋतु व्यतीत करते है। अमेरिका मे पाए जाने वाले ये एन्टीलोप अपने कुल के एकमात्र जीवित सदस्य हैं और पश्चिमी गोलार्द्ध के सबसे तेज दौड़ने वाले (60 किमी./घंटा) जन्तु हैं।

डॉ० एस० के० गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर (अवकाश प्राप्त)
दीपाली राणा, शोध छात्रा
प्राणी विज्ञान विभाग,
डी. बी. एस. (पी. जी.) कालेज
देहरादून – 248001

नित्य बचाएं मां धरती को

डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

प्रभु ने सुंदर धरा बनाई
ऊपर नीला नभ फैलाया
प्राण वायु बन, ऋतुएं देकर
भांति–भांति मानव बहलाया

जीव–जंतु की सुखद सृष्टि दी,
पंचम स्वर, कोयल की बोली
मानव ने फिर यहीं मनाई
वैशाखी, दीवाली, होली

जल, थल, नभ की सुदर रचना
कर बहुविध संसार सजाया
जीव–जगत यह नित फल– फूले
इस हित यह उपहार बनाया

एक न रचना उस ईश्वर की
जिसने जग पीड़ा पहुंचाई
वरन सभी में मृदु आशा भर
जीवन की नव ज्योति जलाई

बिगड़ी बात सभी, यह सत्ता
जब मानव हाथों में आई
तिल–तिल कर उसने कुकृत्यों से
मां धरणी है बहुत सताई

धरती उसकी, अंबर उसका
लड़ा किंतु भाई से भाई
प्रभु संपति हरने को करता
मानव, मानव हाथापाई

जल, थल, नभ जब विकल हुए तो
बिगड़ा पर्यावरण हमारा
दुखी प्रकृति ने जब मानव को
उसकी त्रुटियों हित फटकारा

शांति, मैत्री, अपनत्व सभी से
हटता गया आवरण सारा
फिरता मानव जीवन, खुशियां
पाने को है मारा–मारा

मानव के शैतानी मन ने
दृष्टि क्रूर जिस पर भी डाली
तहस–नहस कर ईश संपदा
पल में बस चौपट कर डाली

अगर हमें लानी है मित्रो !
आंगन–आंगन में खुशहाली
नित्य बचाएं धरती मां को
बचे तभी जीवन की लाली

जीव–जंतु क्या, कण–कण जग का
है मधुमय परिवार हमारा
हर सदस्य जब सुखी रहेगा
बढ़े तभी श्रृंगार हमारा

प्रेम भाव का पोषण जल पा
झूमे जब तृष्णा की डाली
तभी सूखते निर्जन जग के
तरु पर लौटेगी हरियाली

जब प्रदूषण 'मन दानव' से
'स्वच्छ देव' का युद्ध ठनेगा
तभी विश्व में एकल मत से
पुनः राम का राज्य बनेगा

संपादक 'विकल्प',
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान,
देहरादून–248005

तापमान वृद्धि : बोलते आंकड़े

- ग्लेशियरों के खिसकने, तूफानों के तीव्र होने, तापमान में वृद्धि होने, ध्रुवीय भालुओं के कम हो जाने की आशंका आदि से सर्वत्र वैश्विक तापमान वृद्धि जैसी संकटपूर्ण स्थिति ने तमाम सरकारों, संस्थानों को यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि किस प्रकार 'जिवाश्म ईंधन के प्रयोगों में ऐतिहासिक परिवर्तन लाये जायें?
- कोयला, तेल व प्राकृतिक गैस का खनन करने वाले विश्व के प्रमुख उद्योग लगभग 7 बिलियन टन, 'कार्बन' का प्रति वर्ष खनन करते हैं, और हम इसे पूरा–का–पूरा जलाकर कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि करते हैं।
- कार्बन डाइऑक्साइड का 1 पीपीएम 21 बिलियन टन वातावरणीय कार्बन के बराबर होता है अतः पी पी एम का अर्थ होगा 1200 बिलियन टन। वर्तमान में यह मात्रा 800 बिलियन टन है।
- 30 मील प्रति गैलन (mpg) ईंधन खपत की दर से प्रति वर्ष 10000 मील चलने वाली एक कार प्रति वर्ष 1 टन कार्बन मुक्त करती है। परिवहन विशेषज्ञों का अनुमान है कि वर्ष 2056 तक विश्व की सड़कों पर 2 बिलियन कारें होगी और वे प्रतिवर्ष औसतन 10,000 मील दौड़ेंगी। 30 mpg की ईंधन खपत दर पर वे प्रति वर्ष लगभग 2 बिलियन टन कार्बन उत्सर्जन करेंगी। वर्ष 2002 में वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में 43% तेल ईंधन व शेष (लगभग 20%) प्राकृतिक गैसों का सहयोग था।
- वैश्विक हरितगृह उत्सर्जनों में 25% अंश परिवहनों का होता है।
- उपभोतक्ताओं द्वारा प्रतिदिन 80 मिलियन बैरल पेट्रोलियम का उपयोग किया जाता है जिसका 2/3 परिवहन कार्यो में प्रयुक्त होता है।
- विश्व की वार्षिक, प्राथमिक ऊर्जा आवश्यकता लगभग 44,7000 पेटाजूल (1 petajoule = 300 giga-watt-hour) है, जिसका 80% कार्बन उत्सर्जित करने वाले कोयले, तेल व गैस से आता है।
- हरितगृह गैसों के उत्सर्जन का लगभग 35% भवनों से आता है।
- 2050 तक विश्व–स्तर पर ऊर्जा की खपत 160% तक बढ़ जायेगी।
- **'वर्ल्ड वॉच इंस्टीट्यूट'** की एक रिपोर्ट (1992) के अनुसार पृथ्वी की सतह सबसे गर्म 1990 में थी और आंकड़ो के अनुसार लगभग सभी 20 भीषण गर्मी वाले वर्ष 1980 के बाद के रहे हैं।

मच्छर सिकंदर

ऐ दिल, है मुश्किल जीना यहाँ,
जरा हटके, जरा बचके,
ये है .....''मच्छर''.....मेरी जाँ।

नोटः– लेख में वर्णित चित्रों के लिए पत्रिका कवर पृष्ठ के भीतरी भाग में देखें।

जी हाँ ! मच्छर । प्रकृति में अपनी योग्यता प्रमाणित कर चुका, मच्छर ! डार्विन के जैव विकास सिद्धांत के अनुसार, जीवन के लिए संघर्ष होता है और जो उस संघर्ष में अपनी योग्यता सिद्ध करता है, उसे ही प्रकृति की गोद में रहने का परमिट मिलता है, अर्थात् जो जीता वही सिकंदर। 2.5 मिलिग्राम के मच्छरों का विकास उसी काल में (लगभग 25 करोड़ वर्ष पूर्व) हुआ जब इस पृथ्वी पर विशालकाय डायनोसॉर विचरण किया करते थे। डायनोसॉर का नामोनिशाँ तो मिट गया परन्तु 'मच्छर' महाशय ने उद्विकास के नियमों का पालन किया और तब से अब तक अपने आपको 'योग्यतम' (डार्विन की भाषा में 'फिटेस्ट') सिद्ध करता रहा और प्रकृति का दिल जीतता रहा।

प्रकृति के नियमों के विरूद्ध आचरण करने वालो को यह प्रकृति ''गैट आऊट'' कर देती है। लाखों जातियाँ, प्रजातियाँ जो कभी इस पृथ्वी पर थीं, आज उनका नामोनिशाँ नहीं मिलता और जो कुछ मिलता है, वह प्रमाण भी पृथ्वी के गर्भ में जीवाश्मों (फॉसिल) के रूप में सुरक्षित है। कहाँ गये वे विशालकाय डायनोसॉर ? कहा जाता है न, अच्छे–अच्छे आये और चले गये, तुम्हारी तो बिसात ही क्या ! 'मच्छर' जैसे दो पंखों वाले, कान के पास भनभनाते, कोहनी या पैर में चालाकी से काट कर खून चूसने वाले इन कीटों ने क्या–क्या योग्यताएँ नहीं अर्जित की, मानव तो पनाह ही माँग गया। मानव ने कहा ''न रहेगा मच्छर और न ही रहेगा मलेरिया''। मच्छर ने कहा '' मैं भी रहूँगा और मलेरिया भी रहेगा''। अरे भई ! प्रकृति का 'सर्टिफिकेट' है हमारे पास। अरबों रूपया राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन प्रोग्राम में स्वाहा हो गया पर वही ढाक के तीन पात। यह तो वर्चस्व की लड़ाई है। संघर्ष जारी है। मच्छर की सेहत तो और ठीक–ठाक ही हुई है। मानव को कुछ और पैंतरे बदलने पड़ेंगें, नही तो मच्छर चित्त कर देगा।

योग्यता की ये प्रतिमूर्तियाँ हमारे इर्द–गिर्द रहती हैं। एक अनुमान के अनुसार इनकी लगभग 3500 प्रजातियॉ विश्व भर मे पाई जाती हैं, जिनमें से लगभग 10% (350) भारत में रहती है। विश्व के लगभग 700 करोड़ लोग प्रतिवर्ष इनसे प्रभावित रहते हैं, क्योंकि न केवल ये खून चूसते है, बल्कि इनके द्वारा **मलेरिया, फाईलेरिया, डेंगू, चिकनगुनिया, जापानी इन्सिफेलाईटिस, यलो फीवर** जैसे घातक रोगों का भी संक्रमण किया जाता है। बरसात के मौसम में व उसके बाद इनका प्रकोप प्रारम्भ होता है। गढ्ढ़ों, तालाबों, बगीचों, बेकार पड़े बर्तनों, डब्बों, टायरों, सेप्टिक टैंकों में इनका प्रजनन होता है। औसतन 7–10 दिन में इनका जीवन चक्र पूरा हो जाता है।

आइये! अपने, प्रतिद्वंदी मच्छर प्रजातियों को पहचानें :

1. ऐनोफिलीज़ (चित्र 1)

कुल 450 जातियों में से 58 भारत में पाई जाती है। इनके पंखो के ऊपरी किनारों पर 3 या 4 काले धब्बे होते हैं, और जब ये बैठते हैं तो सतह से 45°–90° का कोण बनाते हैं, परन्तु इनके लार्वा पानी में तैरते हुए सतह के समानान्तर रहते हैं। *ऐनोफिलीज क्यूलीसीफेसीज़* व्यापक रूप से पायी जाने वाली वह जाति है, जो मानसून में प्रजनन करती है और **मलेरिया** (जाड़ा देकर बुखार आना) जैसे घातक रोग के कारकों में 60–70% तक का योगदान करती है। **जापानी इन्सिफेलाईटिस** (दिमागी बुखार) नामक रोग के विषाणु (वायरस) भी इनकी कुछ जातियाँ फैलाती हैं।

2. क्यूलैक्स (चित्र 2)

शहरी क्षेत्रों में पाई जाने वाली मच्छरों की जातियों में लगभग 70% *क्यूलेक्स क्विनक्वेफेसिएटस* नामक जाति का होता है। *क्यूलैक्स* की 800 जातियों में से भारत में 59 जाति पाई जाती हैं। **'हाथी पाँव', 'हाईड्रोसील'** (फाईलेरियासिस) जैसे रोगों को फैलाने वाले **सूत्रकृमि** (निमेटोड) **फाईलेरिया** परजीवी इन मच्छरों में वास करते हैं। रात में ही रक्त चूसने वाले ये मच्छर 5 कि0मी0 तक की उड़ान भरते हैं और इनके वयस्क सतह के समानान्तर बैठते है तथा लार्वा जल की सतह से कोण बनाकर लटके रहते हैं।

3. ऐडीज़ (चित्र 3)

भारत में इस मच्छर की लगभग 111 जातियाँ पाई जाती हैं, पर प्रमुख रूप से *ऐडीज एजिप्टाई* व *ऐ0 एल्बोपिक्टस,* **'डेंगू'** तथा **'चिकनगुनिया'** नामक तेज ज्वर, चकत्ते व जोड़ों में असहनीय पीड़ा के लक्षण वाले रोग उत्पन्न करते हैं। पेड़ों के तनों के गढ्ढ़ों, कूलर की टंकियों, खाली पड़े डब्बों, बेकार पड़े टायरों आदि में ये प्रजनन कर लेते है। इसे इसके काले शरीर पर उपस्थित चमकीली सफेद धारियों के कारण पहचाना जा सकता है। **ध्यान दीजिए!** यह वही मच्छर है, जो दिन के समय

पैरों पर, कान के पीछे, कोहनी के पीछे बड़े शातिराना अंदाज मे काटता है। काटने के बाद की जलन तो सभी को याद होगी। खा–पीकर यह घरों में ही छिपा रहता है।

4. मैनसोनिया (चित्र 4)

सुनहरे भूरे शरीर व चित्तिदार टाँगों वाले इन मच्छरों की भारत में केवल 4 जातियाँ ही हैं। जलकुम्भी जैसे जलीय पौधों वाले तालाबों में प्रजनन करने वाले ये मच्छर **'फाईलेरिया'** (सूत्र कृमि) का संक्रमण करते हैं, विशेषतः दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्रों में।

5. आर्मीजेरीज़ (चित्र 5)

सलेटी रंग के इस मच्छर के शरीर पर काली सफेद धारियाँ होती हैं। भारत में इसकी 17 जातियाँ मुख्य रूप से पेड़ों, झाड़ियों, गैस पाईप, सेप्टिक टैंक आदि में छिपी रहती हैं। *आर0 सुबलपेटस* नामक जाति ताईवान में जापानी इन्सिफेलाईटिस का संक्रमण फैलाने वाले मच्छरों में प्रमुख है। साथ ही साथ यह एक ऐसे फाईलेरिया परजीवी के वाहक होते हैं, जिन्हें इनका प्रतिरक्षा तंत्र (इम्यून सिस्टम) तुरन्त नष्ट कर देता है। इस विशिष्टता के कारण परजीवी प्रतिरोधकता के आनुवांशिक आधार (जिनेटिक बेसिस ऑफ रेसिस्टैंस) खोजने की सम्भावनाएँ बढ़ गई हैं।

6. टॉक्सोरिंकाईटीज़ (चित्र 6)

कुल 72 जातियों में से 8 जातियाँ भारत में पाई जाती हैं। इनके व्यस्क धातुई चमक वाले व गहरे रंग के होते हैं। इसकी विशेषता यह है कि ये शिकारी मच्छर अन्य मच्छरो के लार्वों को खाते हैं और *एडीज़* के समान पेड़ों के गढ्ढों, खाली पड़े बेकार बर्तनों, टायरों आदि में रहकर प्रजनन करते हैं। इनके लार्वे चमकदार, गहरे लाल–भूरे रंग के होते हैं। अन्य मच्छरों के **जैविक नियंत्रण** के लिए *टॉक्सोरिकाईटीज़* मच्छरों में सम्भावनाएँ ढूढ़ी जा रही है।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि खून चूसकर जिंदा रहने वाली मच्छर जातियों की मादाएँ ही खून चूसती हैं जबकि नर फूलों/फलों का रसपान करते हैं (उनके मुखाँगों में खून चूसने के अंग होते ही नहीं)। अधिकांशतः झुंड बनाकर उड़ते हुए समूह में नर–मादा का समागम होता है और समागम के पश्चात् मादाएँ मनुष्य, पक्षी या अन्य गर्म रक्त वाले

स्तनधारी के रक्त पान करने की तलाश में निकल पड़ती हैं। कुछ मादाएँ तो प्रजनन से पहले फूलों का रस चूसती हैं। शायद यह निरंतर उड़ने व समागम साथी को तलाशने के लिए ऊर्जा–पूर्ती के लिए किया जाता हो। प्रजनन के लगभग एक सप्ताह के भीतर सभी नर मर जाते हैं।

मच्छर अपने शिकार को दृष्टि, रसायन व ताप संवेदी अंगों की सहायता से ढूँढ़ते हैं। शरीर के पसीने के साथ उत्सर्जित **कार्बन डाइ आक्साइड, आक्टीनॉल, लेक्टिक एसिड** जैसे रसायनों की गंध इन्हें 100 फिट की दूरी से भी अधिक दूरी से आकर्षित कर लेते है। शिकार पा लेने के पश्चात् ऐसा सुरक्षित व कोमल स्थान ढूँढ़ा जाता है जहाँ पर मादा अपने सुंई–नुमा मुख अंगों से चीरा लगाती है और फिर अपने लम्बे 'शुंड' (सोडा पीने वाले पाईप जैसा खोखला) को प्रवेश कराकर खून चूसना प्रारम्भ कर देती हैं।

(डाक्टरों द्वारा प्रयोग की जाने वाली इन्जैक्शन की खोखली सुँई व उसके कार्य करने की प्रणाली की खोज के पीछे शायद प्रकृति द्वारा मच्छरों को प्रदत्त शुंडो की कार्यप्रणाली ही है। ऐसे शुंड खटमलों में भी होते हैं।)

स्मृति गुप्ता
ओ0 एन0 जी0 सी0 चिकित्सालय,
देहरादून।

विज्ञान वर्ग पहेली - 6 का हल

1 य		2 आ	3 मा	4 श	य		5 ख
6 कृ	7 मि		8 न	ट		9 मि	ली
10 त	र	ल		11 र	सौ	ली	
	गी		12 ली			13 मी	ल
14 आ		15 मी	ट	रि	16 क	ट	न
17 य	18 व		र		19 पा	र	20 स
21 त	रा	जू		22 जू	ट		ल्फ
23 न	ह	र		ल		24 बो	र

घमरौल

अस्तव्यस्त अक्षरों को सुलझा कर 4 अक्षरों के छह विज्ञान संबंधी शब्द बनाइये–

र	उ	ण	त्रे
		◯	◯

म	के	तु	धू
	◯	◯	

ट	ल	म	ख
◯	◯		

वे	ले	र	ड
	◯		◯

ब	चं	बिं	द्र
◯	◯		

ल	शे	फ	ब
◯			

अब गोले के अंदर स्थित अक्षरों के सुव्यवस्थित करके तीन शब्दों का नाम सोचिये जिसका संबंध बॉक्स में स्थित संकेत से है

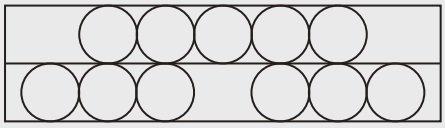

नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले प्रथम एशियाई वैज्ञानिक

प्रेषक : विजय खंडूरी (उत्तर अगले अंक में)

मच्छर की ६ प्रजातियाँ

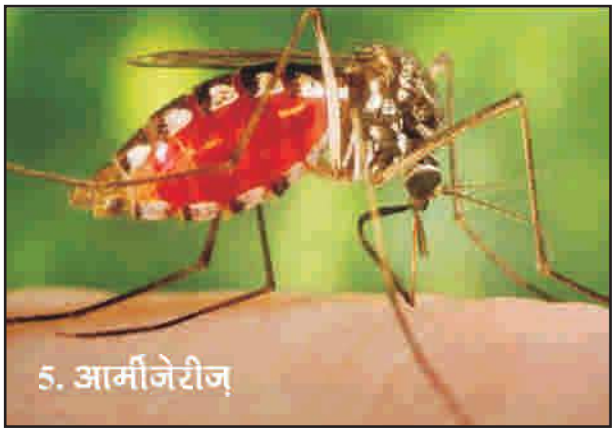

चित्रों की संख्या का संदर्भ अन्दर लेख में देखें।

चित्रों की संख्या का संदर्भ अन्दर लेख में देखें।

1. प्लैंक्टन अथवा प्लावक

2. क्लैम वर्म

. रेड क्रैब (लाल केकड़े)

4. मोनार्क तितली

ग्विला वयस्क

5. ग्लास-ईल

6. एटलांटिक सामन

7. पैसिफिक सामन

8. हेरिंग

9. कॉड

10. हरे कछुए

11. व्हेल

कीटभक्षी चमगादड़

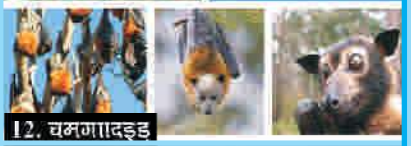

12. चमगादड़

13. कैरीबो

14. वाइसन

15. हाथी

16. प्रौंग हॉर्न एन्टीलोप